ISSN : 0373-1200

अक्टूबर 2002

मूल्य 9.00 रुपए

सी.एस.आई.आर. तथा डी.बी.टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित
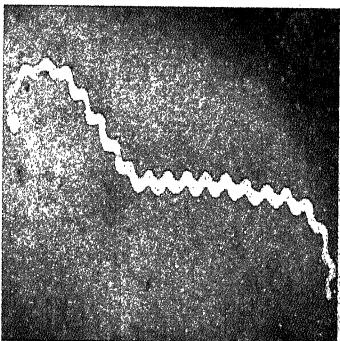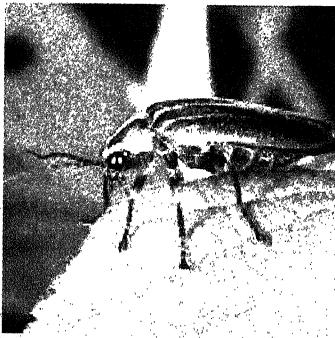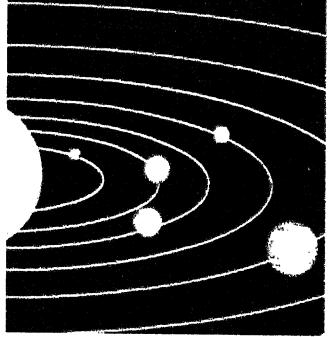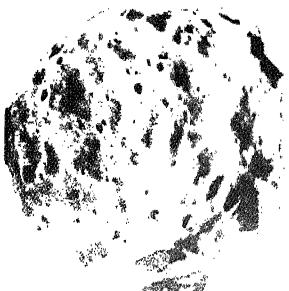
काल की अवधारणा

सूक्ष्मजीवाणु

मंगल ग्रह

जुगनू

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915
वर्ष : 88 अंक : 7
अक्टूबर 2002

मूल्य
दसवार्षिक : 1,000 रुपये
त्रिवार्षिक : 300 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
यह प्रति : 9.00 रुपये

सभापति
डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक एवं प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

मुद्रक
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद
फोन : 502935, 500068

आवरण, आन्तरिक सज्जा व टाइप सेटिंग
शादाब खालिद
79/65, सब्ज़ी मण्डी, इलाहाबाद
फोन : 651264

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

जैव प्रौद्योगिकी के नए आयाम

प्रो० बी.डी. सिंह

मानव योजनाबद्ध तरीके से अन्य जीवों का शोषण करके अपने लिए भोजन, आवश्यक पोषण, वस्त्र आदि आवश्यक कार्बनिक पदार्थों की प्राप्ति करता है। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप आज से 10,000 वर्ष पहले कृषि का आरंभ हुआ। बाद में मानव ने सूक्ष्मजीवों, पादप एवं जंतु कोशिकाओं, तथा इनके अवयवों का उपयोग भी उत्पादों एवं सेवाओं की प्राप्ति के लिए करना आरंभ कर दिया। इस विधा को **जैव प्रौद्योगिकी (Biotechnology)** कहा जाता है। वैसे तो मानव सूक्ष्मजीवों का जाने–अनजाने उपयोग लगभग 5000 वर्षों पूर्व से करता आ रहा है परंतु बायोटेक्नोलॉजी की पुनर्योगज DNA तकनीक से अभूतपूर्व क्षमता एवं गति प्राप्त हुई।

पुनर्योगज DNA तकनीक

आण्विक जैविकी में शोधों के परिणामस्वरूप पुनर्योगज DNA तकनीक के लिए आवश्यक एंजाइमों एवं तकनीकों का विकास हुआ। इस तकनीक में संबंधित जीवों से शुद्ध DNA विलग करके उसे उपयुक्त प्रतिबंध एंजाइमों द्वारा विदलित किया जाता है। प्रतिबंध एंजाइम DNA के अणु निश्चित क्षारक क्रमों पर ही विदलित करते हैं। इस प्रकार DNA खंडों को उपयुक्त वाहक में समावेशित करने पर पुनर्योगज DNA प्राप्त होता है। इसे सामान्यतया ई.कोली में क्लोनित करते हैं। वाहक ऐसे DNA अणु होते हैं जो स्वयं स्वतंत्र प्रतिकृति करने में सक्षम होते हैं और जिनमें उपस्थित जीनों के कारण DNA खंडों का क्लोनन और सुविधाजनक हो जाता है। पुनर्योगज DNA युक्त ई. कोली क्लोनों में से उस क्लोन की पहचान की जा सकती है, जिसमें संबंधित जीव का वांछित DNA खंड उपस्थित है। इस ई.कोली क्लोन से वांछित DNA खंड
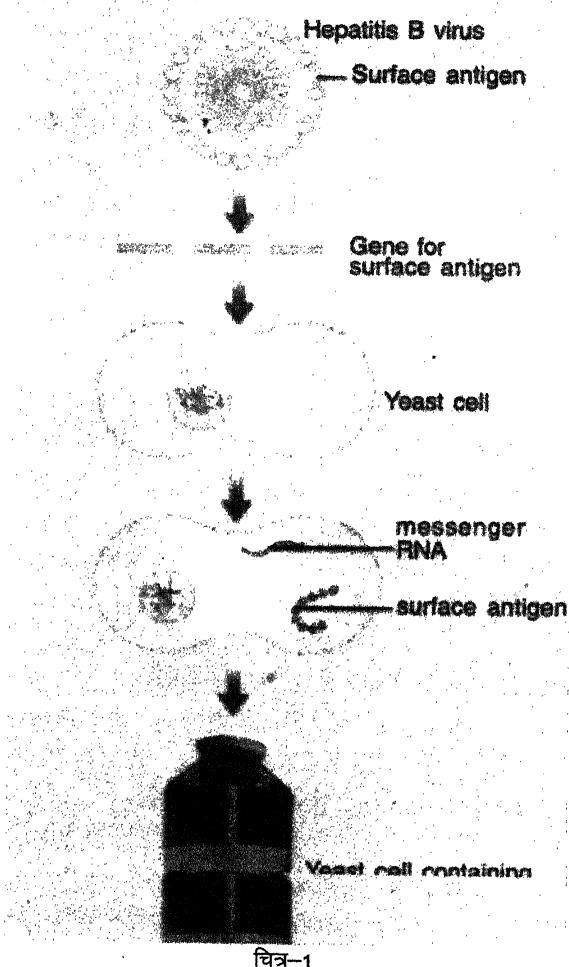
चित्र–1

1 अगस्त 2002 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में दिया गया प्रो० नन्दलाल सिंह स्मृति व्याख्यान

की लगभग असंख्य प्रतियाँ प्राप्त कर सकते हैं, और इसको किसी अन्य जीव के जीनोम में समाकलित कर सकते हैं। इस प्रक्रिया को **आनुवांशिक इंजीनियरी** (Genetic Engineering) कहते हैं।

मानव पादप एवं जंतु स्पीसीजों के जीन प्ररूपों में प्रजनन विधियों द्वारा वांछनीय सुधार करने के योजनाबद्ध प्रयास करता है कि इन विधियों में कि इस प्रकार प्राप्त जीवों के जीनरूप में सुधार होगा। लेकिन आनुवांशिक इंजीनियरी द्वारा जीव के जीनोम में किसी नए जीन का जिसे **पराजीन** कहते हैं, समाकलन किया जाता है, और यह वांछित सुधार होगा। किसी जीव में प्रवेशित पराजीन द्वारा कोडित प्रोटीन लिखित प्रकार्य कर सकते हैं :

1. यह प्रोटीन स्वयं वांछनीय उत्पाद हो।
2. यह प्रोटीन स्वयं वांछित लक्षण प्ररूप उत्पादित करे।
3. यह प्रोटीन किसी जैव संश्लेषण पथ के अंतिम उत्पाद में परिवर्तन करे।
4. किसी जैव संश्लेषण पथ द्वारा उत्पादित अंतिम उत्पाद की मात्रा में वृद्धि करे।
5. जैव संश्लेषण पथ में नई शाखा उत्पन्न करे।
6. पराजीन द्वारा उत्पादित RNA किसी जैव संश्लेषण पथ को रुद्ध करे।

आनुवांशिक इंजीनियरी की अवस्थाएँ

आनुवांशिक इंजीनियरी की मुख्य रूप से तीन अवस्थाएँ मानी जाती हैं। प्रथम अवस्था में यूकैरियोटी (मुख्य रूप से मानव) जीनों को प्रोकैरियोटों में क्लोन किया जाता है। इन प्रयासों का उद्देश्य औषधीय प्रोटीन, जैसे इन्सुलिन, इन्टरफेरान आदि का बैक्टीरिया द्वारा उत्पादन था। ये प्रयास काफी सफल रहे और ऐसे अनेक उत्पाद आजकल बाजार में उपलब्ध हैं। इंसुलिन उनका सर्वप्रथम उदाहरण है।

आनुवांशिक इंजीनियरी की दूसरी अवस्था में प्रोकैरियोटों से जीनों का पौधों में स्थानान्तरण किया गया। इन प्रयोगों का उद्देश्य पौधों में जैविक एवं अजैविक प्रतिबलों से रोधिता उत्पन्न करना था। इसके परिणामस्वरूप सर्वप्रथम शाकनाशीरोधी किस्मों का विकास किया गया। बाद में कीटरोधी एवं वाइरसरोधी किस्में विकसित की गईं। कवक एवं बैक्टीरिया रोगजनक रोधी किस्मों के विकास के भी प्रयास किए जा रहे हैं।

आजकल आनुवांशिक इंजीनियरी की तीसरी अवस्था का दौर है। इस अवस्था में प्रोकैरियोटी एवं यूकैरियोटी जीनों का जंतुओं एवं विशेष रूप से पौधों में स्थानांतरण किया जा रहा है। इन स्थानांतरणों का उद्देश्य जंतुओं/पौधों की वृद्धि दर सुधार, अधिक उत्पादकता की प्राप्ति, गुणवत्ता में सुधार आदि है।

कीटरोधी किस्में

आजकल कई फसलों जैसे मक्का, कपास आदि की कीटरोधी किस्मों की कई देशों में खेती की जा रही है। भारतवर्ष में भी कपास की ऐसी किस्मों का मूल्यांकन किया जा रहा है। इन किस्मों में मृदा पाए जाने वाले एक बैक्टीरिया, बैसिलस थुरिंजिएंसिस (Bacillus thuringiensis) का cry जीन स्थानांतरित किया गया है। यह जीन एक कीटनाशी प्रोटीन का उत्पादन करता है। जब यह प्रोटीन कीटों की आँतों में पहुँचता है तो प्रोटिएसों द्वारा इसका विदलन होता है। इसके फलस्वरूप एक आविष उत्पन्न होता है जो कीटों की आँतों की कोशिकाओं की झिल्ली में उपस्थित ग्राही अणुओं से विशिष्ट रूप से आबद्ध होता है। इसके परिणामस्वरूप इन कीटों की मृत्यु हो जाती है। ध्यान देने योग्य है कि संबंधित कीटों के लार्वा ही इस प्रोटीन से ग्राही होते हैं, उनके वयस्क नहीं। इन कीटरोधी किस्मों के उपयोग से कीटनाशकों के उपयोग तथा फसलों की कीटों से होने वाली क्षति दोनों में ही काफी कमी आएगी।

'फ्लेवर सेवर' टमाटर

टमाटर के फल पकने के बाद धीरे धीरे गलने लगते हैं, जिससे वे जल्दी ही खराब हो जाते हैं। फलों के गलने का कारण एक एंजाइम पालीगैक्ट्यूरोनेस होता है, जो फलों के कोशिकाओं को आपस में चिपकाए

रखने वाले पदार्थ, पेक्टिन, का पाचन करता है। प्रतिअर्थन RNA तकनीक से किसी भी जीन की अभिव्यक्ति को रुद्ध कर सकते हैं। इस तकनीक के उपयोग से पालीगैलैक्टयूरोनेस को कोडित करने वाले जीन की अभिव्यक्ति रुद्ध करने से 'फ्लेवर सेवर' किस्म की प्राप्ति हुई। इस किस्म के फल अपेक्षाकृत धीमी गति से गलते हैं, फल अधिक सुस्वादु होते हैं और इनमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। खेती के लिए उपयोग की जाने वाली पराजीनी पौधों की यह सर्वप्रथम किस्म थी।

खाद्य टीके

टीकों के विकास में सबसे नया आयाम खाद्य टीकों की अवधारणा है। कई रोगजनकों के प्रतिजनों को मुख से लेने पर भी टीकाकरण हो जाता है, जैसे पोलियो का टीका। ऐसे प्रतिजनों को कोडित करने वाले जीनों को यदि आलू, केला या किसी अन्य फल में अभिव्यक्त किया जाए तो इन फलों को निर्धारित अवधि तक खाने से टीकाकरण हो जाएगा। विभिन्न रोगों के टीका–फलों को भिन्न–भिन्न रंगों का बनाया जा सकता है। केलों को खाद्य टीकों के रूप में परीक्षण किया जा रहा है। शहद द्वारा टीकाकरण के भी प्रयास हो रहे हैं। टीका शहद विशेष रूप से विकसित पराजीनी किस्मों के फूलों से प्राप्त की जाएगी।

औषधि प्रोटीन हिरुडिन

पराजीनी किस्मों से पुनर्योगज औषधीय प्रोटीनों का उत्पादन एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। हिरुडिन प्रोटीन एक ऐसा उदाहरण है। हिरुडिन रक्त में थक्का बनने से रोकता है। इस प्रोटीन को कोडित करने वाले जीन को बैसिका नेपस में अभिव्यक्त किया गया है, जहाँ यह बीजों में भंडारित होता है। यूरोप में इन बीजों से प्राप्त हिरुडिन का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन किया जा रहा है।

पौधों में औषधीय प्रोटीनों के उत्पादन के अनेक लाभ हैं लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति में सबसे बड़ी समस्या इन प्रोटीनों की प्राप्ति एवं शोधन है, क्योंकि इसकी विधियाँ काफी खर्चीली होती हैं। इन समस्याओं को सुलझाने के प्रयास किए जा रहे हैं। हिरुडिन प्रोटीन को तेल पिंड प्रोटीन ओलियोसिन के साथ संगलित प्रोटीन के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। इससे जब नेपस के बीजों को पानी में पीसते हैं तो हिरुडिन तेल पिंडों के साथ पानी की सतह पर तैरने लगता है। इससे इसकी प्राप्ति एवं शोधन दोनों ही काफी आसान हो जाते हैं।

'लारिकाल' ब्रैसिका नेपस

उपयुक्त पराजीनों के स्थानांतरण द्वारा प्रोटीनों एवं तेलों की गुणवत्ता में भी सुधार किया जा सकता है। ब्रै. नेपस के तेल की गुणवत्ता में परिवर्तन करके 'लारिकाल' किस्म विकसित की गई है। इस किस्म के तेल में लारिकाल (92C संतृप्त वसीय अम्ल) की मात्रा नारियल के तेल में उपस्थित मात्रा के लगभग बराबर हो गई है। 'लारिकाल' का तेल खाने के लिए उपयुक्त नहीं होता है, लेकिन यह औद्योगिक उपयोगों के लिए काफी उपयुक्त होगा।

आनुवांशिक इंजीनियरी द्वारा अन्य अनेक प्रकार की पराजीनी किस्मों का विकास किया जा सकता है। इस प्रकार की किस्मों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं : रंगीन रेशे (लाल, बादामी, नीली, काली) वाली कपास, जैव अपघटनीय प्लास्टिक उत्पादन के लिए पाली हाइड्राक्सी ब्युटाइरेट का उत्पादन करने वाले पाप्लर, हार्मोन प्रेरित नर बंध्य क्रम, धीमी गति से पकने वाले टमाटर, उत्कृष्ट गुणवत्ता वाले प्रोटीन वाली किस्में, विटामिन ए उत्पादन करने वाली धान की 'सुनहली' किस्म (गोल्डन राइस) आदि।

मानव स्वास्थ्य

मानव स्वास्थ्य के क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी के योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं। पुनर्योगज DNA तकनीक से उत्पादित औषधियाँ जैसे इन्सुलिन, इंटरफेरान आदि टीके, जैसे हिपेटाइटिस बी के टीके आदि, निदान के लिए किट आदि जैसे उत्पादों का व्यापक उपयोग हो रहा है। जैव संवेदकों का विकास विभिन्न अणुओं की अतिसूक्ष्म मात्राओं की उपस्थिति को अतिविशिष्ट रूप से ज्ञात करने के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ,
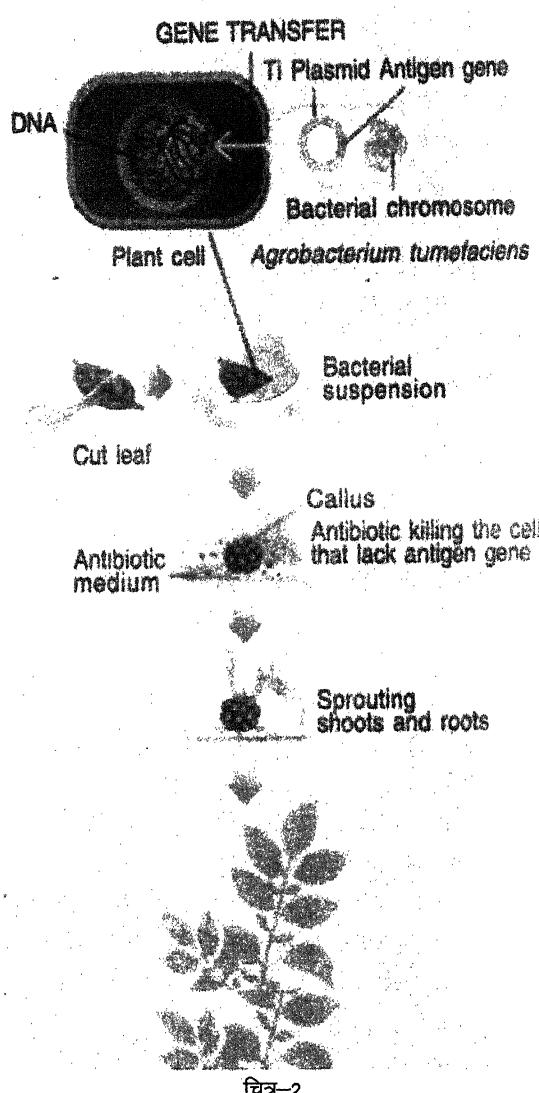
चित्र–2

कोकेन के लिए विशिष्ट प्रतिरक्षी पर आधारित जैव संवेदक वायु में उपस्थित कोकेन की अति सूक्ष्म मात्रा (वायु का 10^{-9} अंश) का निश्चित पता लगा लेता है। इसी प्रकार DNA अथवा RNA पर आधारित संवेदक अपने पूरक DNA या RNA क्रम की 10^{-15} मात्रा को भी ज्ञात कर लेता है। इन संवेदकों का उपयोग रोग जीन निदान, संदूषण ज्ञात करने आदि के लिए किया जाता है।

जीन उपचार

ये मानव जीन या तो त्रुटिपूर्ण अथवा सामान्य से अधिक सक्रिय हो सकते हैं। कैंसर रोग में दोनों ही स्थितियाँ पाई जाती हैं। मानव अनेक वंशागत रोगों से पीड़ित होता है। इसके साथ ही अनेक रोगों में मानव जीनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसे रोगों के उपचार के लिए जीन उपचार की विधियाँ विकसित की जा रही हैं। इन विधियों में रोगी के शरीर में त्रुटिपूर्ण जीन की सामान्य प्रति प्रविष्ट की जाती है जिससे रोग के लक्षणों में आशातीत सुधार होता है। अधिक सक्रिय जीनों की प्रतिअर्थक प्रतियाँ प्रविष्ट की जा सकती हैं। जीन उपचार पर हुए प्रयोगों के परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहे हैं। परंतु अभी भी कई समस्याओं के समाधान खोजे जा रहे हैं जिससे यह विधि निरापद हो सके।

प्रतिअर्थक ओलिगोन्यूक्लियोटाइड

ये 20–30 क्षारक लंबे संश्लिष्ट DNA क्रम होते हैं जो किसी जीन के दूत RNA के पूरक होते हैं। ये क्रम संबंधित जीन या उसके दूत RNA से पूरक युग्मन करके उसकी अभिव्यक्ति को रोक सकते हैं। अतः इन ओलिगोन्यूक्लियोटाइडों के उपयोग से मानव के रोग उत्पादक अधिक सक्रिय जीनों की अभिव्यक्ति रोक या कम कर सकते हैं। इसके साथ ही, किसी भी रोगजनक के रोग उत्पादन में महत्वपूर्ण जीन का दमन कर सकते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि रोगजनक के इस जीन का समजात जीन मानव जीनोम में उपस्थित न हो। अभी इनके उपयोग में मानव कोशिकाओं में प्रवेशन, इन क्रमों की मानव शरीर में स्थिरता संबंधी समस्याएँ हैं, जिनके समाधान खोजे जा रहे हैं।

जैवपेटेंट एवं जैवदस्युता

जैव प्रौद्योगिकी का आर्थिक महत्व तेजी से बढ़ता जा रहा है। इसका एक उदाहरण पराजीनी किस्मों की खेती है जो 1997 में केवल 120 लाख हेक्टेयर से बढ़कर 2000 में 600 लाख हेक्टेयर से

शेष पृष्ठ 15 पर ...0

गपशप का ई-तरीकाः चैटिंग

इंटरनेट द्वारा गपशप करना, अर्थात् इंटरनेट चैटिंग जो आजकल के युवावर्ग के लिए मनोरंजन का साधन मात्र है। जैसे किसी गाँव देहात के चौपाल पर बैठकर या फिर किसी गली के नुक्कड़ पर, अथवा शहरों की कैंटीन–क्लब में इकट्ठा होकर घंटों विविध विषयों पर गप्पें हाँकी जाती हैं, ठीक इसी प्रकार अब इंटरनेट द्वारा पूरे विश्व में कहीं भी, जितने चाहे लोगों से आप अपने मनचाहे विषयों पर गपशप कर सकते हैं, जैसे कि गली के नुक्कड़ पर अथवा गाँव की चौपाल पर बैठे अपने गाँव के विकास के बारे में, राजनीति के या फिर सिनेमा, नाटक, खेल, सेक्स अथवा सिद्धांतवाद आदि जैसे अनेक विषयों पर अक्सर बढ़चढ़ कर गप्पें की जाती हैं, उसी प्रकार से इंटरनेट पर भी अलग अलग विषयों की बातें सदैव जारी रहती हैं। अलग अलग विषयों पर चर्चा करने के लिए अलग अलग चैट ग्रुप बनाए गए हैं। इस चर्चा के लिए समय, स्थान आदि की पाबंदी भी नहीं होती बल्कि चौबीसों घंटे ये चर्चाएँ जारी रखी जा सकती हैं और फिर कोई भी व्यक्ति, किसी भी समय, कहीं से भी उसमें हिस्सा ले सकते हैं और रुचि समाप्त होने पर अपनी इच्छानुसार वार्तालाप से बाहर निकल सकता है। सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो इंटरनेट चैटिंग भावी पीढ़ी की प्रतिभा को विश्वस्तर पर निखारने में सहायक साबित हुई है, जैसे कोई युवक या युवती पॉप संगीत की शौकीन है तो वह पॉप म्यूजिक लवर्स ग्रुप में हिस्सा लेकर विश्व में सभी पॉप संगीत प्रेमियों से बातचीत कर सकेगी। अपनी प्रतिभा, अपनी जानकारी को संपूर्ण विश्व के आगे प्रस्तुत कर सकती है, साथ ही अपने ज्ञान में भी वृद्धि कर सकती है।

क्या है ई-गपशप

इंटरनेट का उपयोग करते हुए कम्प्यूटर पर टाइप किए गए संदेश की सहायता से जानकारी लेना
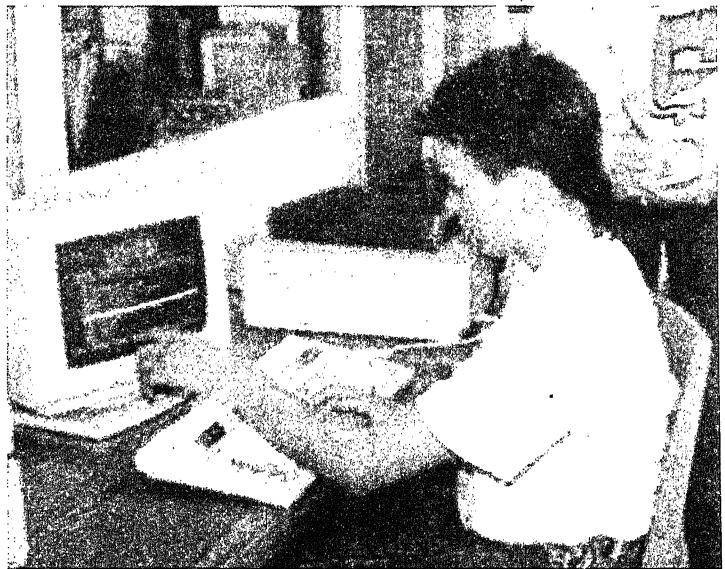
और देना ही ई–गपशप है। इस दौरान की जाने वाली चर्चा अथवा बातचीत को ही चैटिंग के नाम से जाना जाता है। ई–चर्चा में एक साथ एक या अनेक लोग भाग ले सकते हैं। वे भले ही विश्व के किसी भी कोने में रहते हों इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

क्या ई–चैटिंग के लिए प्रशिक्षण लेना जरूरी है ?

कदापि नहीं। ई–चैटिंग करने के लिए कम्प्यूटर का किसी भी प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त करना बिल्कुल भी जरूरी नहीं है। बस आपको की बोर्ड पर टाइप करना आना जरूरी है। अपने पसंदीदा चैटग्रुप में शामिल होने के विषय में बस कुछ ही घंटों में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसे सीखने के लिए सबसे उचित जगह है इंटरनेट कैफे अथवा साइबर ढाबे।

इसके लिए क्या करना पड़ता है ?

यदि आप इंटरनेट चर्चा में शामिल होने के इच्छुक हैं तो पहले अपने निकट के इंटरनेट कैफे में पहुँचें। इस कैफे में 10 रु0 से 30 रु0 तक विविध दरों पर इंटरनेट आपके लिए उपलब्ध है। हालाँकि इंटरनेट की दर उस स्थान पर उपलब्ध की गई सुविधाओं के अनुसार आँकी जाती है। शुरू शुरू में तो आप कम दर वाले इंटरनेट कैफे का चयन करें। इंटरनेट से जुड़ने की विधि कम्प्यूटर मॉनीटर स्क्रीन पर दर्शाई जाती है। यदि आपको कोई भी जानकारी नहीं है तो इंटरनेट कैफे का व्यवस्थापक अवश्य ही आपको सहायता एवं मार्गदर्शन तत्परता के साथ करेगा क्योंकि आज के उपभोक्ता–प्रधान युग में हर नए ग्राहक का इंतजार कैफे व्यवस्थापक को होता है। अतः चैट ग्रुप खोजना व चर्चा शुरू कैसे करना आदि बातों की जानकारी आपको वहाँ दी जाएगी। इसे आप बड़ी शीघ्रता से समझ जाएँगे क्योंकि यह टी.वी. के रिमोट कंट्रोल से चैनल खोजने के समान सरल है।

ई–चैटिंग हर उम्र के उपभोक्ता के लिए

कोई भी व्यक्ति जो विविध विषयों पर बातचीत करना गप्पें मारना चाहे वह ई–चैटिंग द्वारा अन्य लोगों से इंटरनेट गपशप कर सकता है। इसमें स्त्री पुरुष अथवा छोटे बड़े का कोई बंधन नहीं होता है। ई–चैटिंग में युवा अक्सर अपने उपनाम के द्वारा ई–चर्चा में भाग लेते हैं। किंतु अनेक अच्छे चैटग्रुप के सदस्य अपना सही (असली) परिचय देकर चर्चा करते हुए सच्ची दोस्ती निभाते हैं। विविध विश्वस्तरीय विषयों पर चर्चा किए जाने से आपके ज्ञान में वृद्धि होती ही है साथ ही ई–चर्चा में शामिल होने वाले लोगों से मित्रता कायम होती है और घनिष्ठता भी बढ़ती है एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के संबंध स्थापित होते हैं जो कि अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

धोखाधड़ी की संभावनाएँ

जिस प्रकार किसी भी व्यवहार में मित्रता के बीच धोखाधड़ी की घटनाएँ होती रहती हैं, ठीक उसी प्रकार इंटरनेट चैटिंग में भी धोखाधड़ी संभव है। किंतु पर्याप्त कानून व्यवस्था न होने से अथवा बदनामी के भय से ऐसी घटनाएँ नहीं होती। गत् दो वर्ष पूर्व अमेरिका की केरी टेर बॉक्स नामक एक लड़की का परिचय अमेरिकन ऑनलाइन (टीन चैट रूम) के चर्चा कक्ष में मार्क नामक एक लड़के से हुआ। केरी की उम्र उस समय मात्र 13 वर्ष थी। दो वर्षों तक इंटरनेट चैटरूम में परिचय बढ़ने से मार्क ने केरी से मिलना चाहा। केरी की कल्पना में मार्क की छवि 16–17 वर्षीय युवक की थी। किंतु प्रत्यक्ष मुलाकात से पता चला कि मार्क 41 वर्षीय फ्रेंच युवक है। इस प्रकार मार्क ने केरी केरी के साथ धोखाधड़ी की। बेचारी केरी को इस घटना के बाद गहरा आघात पहुँचा। ऐसी अनेक घटनाएँ इंटरनेट चैटिंग के समय घटित होती रहती हैं।

कानून कितना सहायक

अनेक देशों में साइबर कानून एवं इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी कानून बनाए गए हैं। साथ ही अंतर्राष्ट्रीय कानून भी बनाए गए हैं जिनके तहत केरी ने भी फ्रैंक पर मुकदमा चलाया था। क्योंकि ऑनलाइन अत्याचार का यह पहला ही मामला था। केरी द्वारा लिखित केरी डॉट काम नामक पुस्तक में बताया गया है कि इंटरनेट पर सभी प्रकार की स्वतंत्रता होने से ऐसी घटनाएँ होना आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि एक किशोरी की पसंदीदा बातें करने में फ्रैंक न केवल सफल हुआ था बल्कि

अपना नाम मार्क रखकर एक युवक की भूमिका अदा करने में फ्रैंक पूरी तरह कामयाब हुआ था। आज केरी अनुभव करती है कि एक बंधन युक्त ई–चर्चा संवाद खतरनाक होता है। कुछ इसी प्रकार की घटनाएँ भारत में भी घटित हुई हैं। इंटरनेट के चर्चा कक्ष में बैठा व्यक्ति कौन है यह जानता अत्यंत कठिन है क्योंकि एक दूसरे के सामने कोई भी नहीं होता। और फिर सामने वाला व्यक्ति संसार के किस शहर में बैठा है यह भी ज्ञात नहीं हो पाता। अतः हमारे पास उस व्यक्ति द्वारा बताया गया नाम व पता ही सही मानने के अतिरिक्त अन्य विकल्प नहीं होता। अपराध घटित होने से पुलिस का साइबर क्राइम विभाग इंटरनेट की सहायता से ही अपराधी तक पहुँच सकता है।

चर्चा के विषय

इंटरनेट के माध्यम से विश्व स्तरीय सभी विषयों पर चर्चा की जा सकती है। समान विचारों वाले, समान विषयों में रुचि रखने वाले समान लोग स्वयं का अपना चर्चा कक्ष तक निर्माण कर सकते हैं। और इस प्रकार से बनाए गए ई–चैट ग्रुप पूरी तरह से स्वतंत्र होते हैं। वैसे तो इंटरनेट सेवा उपलब्ध कराने वाली कंपनियाँ एवं विविध उद्देश्यों से बनाई गई संस्थाएँ अलग–अलग विषयों पर चर्चा कर सकती हैं। इन पर कोई प्रतिबंध नहीं होता। कुछ चैट क्लबों की सदस्यता प्राप्त करने के लिए पासवर्ड दे कर ही चर्चा कक्ष में प्रवेश पाया जा सकता है। इनमें भी कुछ स्थानों पर मुफ्त तथा कुछ स्थानों पर शुल्क देकर सदस्यता प्रदान की जाती है। इसके लिए इंटरनेट कैफे में व्यतीत किए समय व चर्चा कक्ष शुल्क के अतिरिक्त कोई खर्च नहीं करना पड़ता। पिछली सदी तक केवल गली कूचे के कुछ सीमित लोगों से परिचय होता था किंतु अब तो घर बैठे पूरे विश्व के किसी भी कोने के व्यक्ति से मित्रता की जा सकती है। बातचीत के आदान प्रदान द्वारा ज्ञान के खजाने को असीमित बढ़ाया जा सकता है। चैटिंग के द्वारा 'वसुधैव कुटुंबकम्' का भारतीय संदेश विश्व में साकार होने जा रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं।

–साभार

सी.आर. राव को सर्वोच्च अमेरिकी वैज्ञानिक सम्मान

सेंटर फार मल्टीवैरिएट एनालिसिस के डाइरेक्टर व गणित की अद्वितीय प्रतिभा, भारतीय मूल के कल्यमपुडी आर. राव को स्टैटिस्टिक्स के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान के लिए अमेरिका के सर्वोच्च वैज्ञानिक सम्मान 'नेशनल मेडल आफ साइंस' से विभूषित किया गया है। व्हाइट हाउस में आयोजित एक समारोह में राष्ट्रपति जार्ज बुश ने स्वयं श्री राव को यह मेडल पहनाया। प्रोफेसर सीआर राव की 14 किताबों के साथ साथ विश्वभर के प्रतिष्ठित जर्नलों में उनके 350 से अधिक रिसर्च पेपर प्रकाशित हो चुके हैं। स्टैटिस्टिक्स थ्योरी आफ एप्लीकेशन में अभूतपूर्व योगदान के लिए उन्हें बहुत से अवार्ड मिले हैं। 16 देशों के विश्वविद्यालय उन्हें 27 ऑनरेरी डाक्टरेट डिग्री से सम्मानित कर चुके हैं। सीआर राव 1980 में शोध कार्य जारी रखने के लिए अमेरिका चले गए थे और अब वह अमेरिका की पेंसिलवेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी में स्टैटिस्टिक्स के प्रोफेसर हैं। श्री राव इंस्टीट्यूट आफ मैथेमेटिकल स्टैटिस्टिक्स, इंटरनेशनल स्टैटिस्टिकल इंस्टीट्यूट और इंटरनेशनल बायोमीट्रिक सोसाइटी के पूर्व अध्यक्ष रह चुके हैं। इतना ही नहीं, बल्कि वह आईएमएस, अमेरिकन स्टैटिस्टिकल एसोसिएशन, ब्रिटेन की प्रतिष्ठित रायल सोसाइटी, रॉयल स्टैटिस्टिकल सोसाइटी, इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी, अमेरिकन एकेडमी आफ आर्ट्स एंड साइंस के 'फेलो' भी हैं।

अमेरिकी नेशनल साइंस मेडल के अलावा सीआर राव विल्क्स मेडल आफ द अमेरिकन स्टैटिस्टिकल एसोसिएशन, मेडल आफ द रॉयल स्टैटिस्टिकल सोसाइटी यू.के., मेघनाद साहा मेडल आफ द इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी, महालनोबिस गोल्ड मेडल आफ द इंडियन साइंस कांग्रेस, कलकत्ता यूनिवर्सिटी गोल्ड मेडल और बोस इंस्टीट्यूट के जे.सी. बोस गोल्ड मेडल जैसे प्रतिष्ठित सम्मानों से भी सम्मानित हो चुके हैं।

झूम रहे थे जुगनू नाना

विश्वमोहन तिवारी

जुगनू का नाम लेते ही मन में एक खुशी की लहर दौड़ जाती है। बरसात की नहाई संध्या की इन्द्रधनुषी मुस्कान याद आ जाती है। वर्षा ऋतु में तारों की आँखमिचौनी याद आ जाती है। आकाश के तारों की जगमग को भी हराने वाले जमीन पर जगमगाते जुगनू और उन जुगनुओं के पीछे भागता बचपन याद आता है।

भ्रमर तथा जुगनू के परिवारों में गहरा सम्बंध है। भ्रमर यदि गान के लिए प्रसिद्ध है तो जुगनू अपने मोहक हरे रंग के जगमग प्रकाश के लिए। गुनगुनाते भ्रमर कवियों को बहुत प्रिय रहे हैं। भ्रमरों से सम्बंधित उच्चकोटि की कविताएँ बहुत मिलेंगी। किन्तु जुगनुओं पर बहुत ढूँढने पर भी शायद कहीं कोई कविता मिल जाए। मुझे महाकवि सुमित्रानंदन पंत की एक कविता 'प्रथम रश्मि' में जुगनू का सुंदर प्रयोग मिलाः—

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
तूने कैसे पहचाना।
कहाँ कहाँ हे बालविहंगिनि
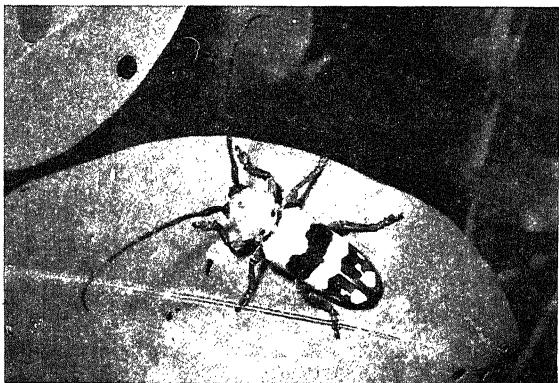
पाया तूने यह गाना।
सोई थी तू स्वप्न नीड़ में
पंखों के सुख में छुपकर
झूम रहे थे धूम द्वार पर
प्रहरी से जुगनू नाना।

देखिए बाल पंछी के प्रति प्रेम दर्शाने के लिए पंत ने जुगनुओं को रात्रि में उनका प्रहरी बना दिया। कितनी अच्छी उपमा है— नाना जुगनू प्रहरी के समान रात्रि में ज्योति हिलाते हुए पहरा देते हैं।

जुगनू को लेकर एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

'सूर सूर तुलसी ससी, उड्गन केशव दास।
बाकी के खद्योत सम, जहँ तहं करत प्रकास।।

इस दोहे में जुगनू को सम्मान नहीं दिया गया जबकि भ्रमर का सम्मान दिखलाने के लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। सूरदास की तो बात ही छोड़ दें, महादेवी वर्मा की कविता की एक पंक्ति ही देखिए— 'विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुन गुन।'

भ्रमर तथा जुगनू में समानताएँ देखने लायक हैं। दोनों ही कीट हैं, दोनों के चार चार पंख होते हैं। किन्हीं किन्हीं मादा जुगनू के पंख नहीं होते इसलिए इन्हें अंग्रेजी में 'फायर फ्लाई' न कहकर 'ग्लो वर्म' कहते हैं। इन दोनों परिवारों के सामने के दो पंख कड़े होते हैं जिनसे उड़ने का काम नहीं लिया जा सकता। हाँ, उड़ान वाले पंखों तथा पूरे शरीर की रक्षा करने का काम ये कड़े पंख करते हैं। अतएव इन्हें कवच पंख कहते हैं तथा ऐसे कीटों को 'कवच पंखी' कीट कहते हैं।

जुगनू अथवा खद्योत अद्भुत कीट है। यह पूर्णतया निशाचर कीट है। खद्योत कीटों की लगभग

1000 जातियाँ हैं जो विश्व के भूमध्यरैखिक तथा समशीतोष्ण क्षेत्रों को प्रकाशित करती हैं। खद्योत कीट के नर तथा मादा दोनों उड़ते हैं। इनका मुख्य भोजन पराग, मकरंद है। किन्तु जब ये इल्ली अवस्था में होते हैं तब ये घोंघे (स्नेल) तथा शंबुक (स्लग) को आहार बनाते हैं। इनमें ये एक ऐसा द्रव, डाक्टर की सुई समान, अपने मुख की सुई जैसी नलिका से डाल देते हैं कि वह मरने लगता है। थोड़ी ही देर में उस द्रव द्वारा शिकार का आधा पचा हुआ भोजन उस नलिका से खींच लेते हैं। और मजे की बात यह भी है कि ये जुगनू इल्ली अवस्था में भी जगमग करने लगते हैं। और ये ऐसा क्यों करते हैं ? सम्भवतः मेंढक, साँप, पक्षी जैसे शिकारियों को अपने कड़ुए स्वाद से आगाह करना चाहते हैं।

जुगनुओं को अंग्रेजी में 'फायर फ्लाई' कहते हैं। इनका प्रकाश गर्मी के कारण नहीं निकलता जैसा कि कागज या लकड़ी के जलने पर निकलता है। इनके प्रकाश विकिरण की क्रिया 'जैव-द्युति' होती है। अर्थात वह अजैव रासायनिक प्रक्रियाओं से भिन्न होती है।

इस जैव प्रक्रिया के लिए इनमें विशेष प्रकिण्व (एन्ज़ाइम) भाग लेते हैं जिसमें आक्सीजन का उपयोग रहता है। हमारे शरीर की पाचन क्रिया में भी प्रकिण्वों का बहुत महत्त्व है। इनकी यह क्रिया 'ट्यूब लाइट' के समान नहीं होती, किंतु इनका प्रकाश उसी के समान ठंडा रहता है। प्रयोगशालाओं में तथा उद्योगों में इस तरह के प्रकाश विकिरक पदार्थों का अजैव रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उत्पादन किया जा रहा है। आश्चर्यजनक बात यह है कि कृत्रिम विधियों की दक्षता प्राकृतिक विधियों की दक्षता की तुलना में बहुत कम है।

जुगनू अपना शीतल प्रकाश किस तरह पैदा करते हैं यह समझने के बाद यह प्रश्न उठता है कि वे ऐसा क्यों करते हैं ? ये कीट अपने स्वभाव से निशाचर हैं क्योंकि रात में शिकारी पक्षियों, मेंढक तथा अन्य कीटों के हमले का खतरा बहुत कम हो जाता है। किन्तु रात्रि में जीवन बिताने में अनेक समस्याएँ भी होती हैं। प्रजनन के लिए नर तथा मादा का मिलना अनिवार्य है। और इनकी संख्या वातावरण की विशालता को देखते हुए कम ही है। फलस्वरूप, नर और मादा एक दूसरे को अंधेरे में कैसे ढूँढें ? कैसे अपनी ही जाति की पहचान करें ? इसलिए विकास के दौरान इन कीटों में प्रकाश का उपयोग आया। भिन्न जातियों के जीव मिलकर सन्तान नहीं पैदा कर सकते जैसे कि सिंह तथा शेरनी मिलकर सन्तान नहीं पैदा कर सकते और यदि ऐसी संतान हो भी जाए तो वह आगे सन्तान नहीं उत्पन्न कर सकती। उसी तरह एक जाति का जुगनू दूसरी जाति की जुगनू के प्रकाश में किस तरह भिन्नता कर सकता है ? एक जाति की जुगनू से दूसरी जाति की जुगनू के प्रकाश में किस तरह भिन्नता लाई जाए ? मजे की बात है कि इसके लिए जुगनू के पास चार ही विधियाँ हो सकती हैं। पहली– हरएक जाति की जुगनू के रंग अलग हों। दूसरी– एक जाति का जुगनू अपनी द्युति की 'जल-भुज' की आवृत्ति अन्य से अलग रखे। तीसरी– इस आवृत्ति में द्युमिमान रहने की अर्थात् 'द्युतिकाल' अवधि भी अलग रखे। और चौथी– मादा जब अपनी जाति के नर के प्रकाश-संकेत को पहचानने के बाद स्वयं को संकेत भेजे तब, उसके संकेत भी उपरोक्त तीनों प्रकार से अन्य जाति की मादाओं के संकेतों से भिन्न होते हैं, साथ ही वह नर के संकेत का उत्तर देने में जो विलम्ब करती है, उस विलम्ब की मात्रा में भी अन्य जातियों द्वारा रखे गए विलम्ब से भिन्न रखा जाता है। कुछ जीवधारियों में ये रंग भी अलग अलग होते हैं, किन्तु रंगों को हज़ारों प्रकार के बनाना और समझना अधिक कठिन काम है। इसीलिए प्रकाश के जगमगाने (जल-बुझने) की आवृत्ति भिन्न जातियों की भिन्न होती है, किन्तु यह भी हजारों जातियों को अलग अलग पहचान देने में कठिनाई पैदा करती है। रात के अँधेरे में खद्योतों की प्रत्येक जाति अपनी प्रकाश के 'जल-बुझने' की आवृत्ति तथा द्युतिकाल की अवधि को और उत्तर के विलम्ब की मात्रा को अच्छी तरह समझती है और अन्य जातियों से भेद कर सकती है।

प्रकृति में नर की उपादेयता मादा से अक्सर कम होती है। इसलिए 'नर' अधिक खतरा मोल ले सकता है। इसीलिए नर पक्षी मादा की खोज में रात के अँधेरे में निकलता है तो उसका जगमगाना बराबर चलता रहता है। जबकि मादा जुगनू किसी घास पर या
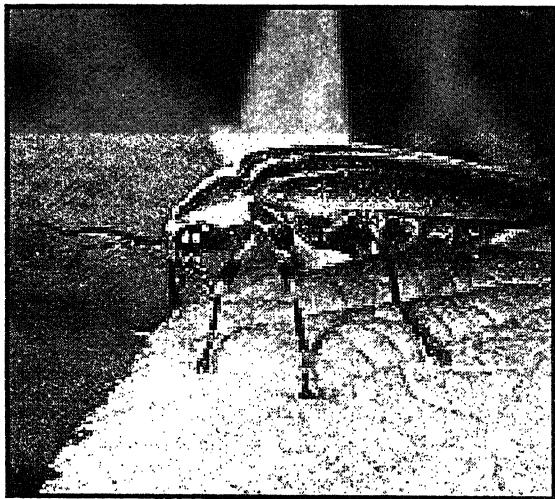
छोटी झाड़ी की फुनगी पर चुपचाप बैठी देखती रहती है। ज्योंही उसे अपनी ही जाति के नर का द्युति संकेत दिखता है तब वह उत्तर में अपने प्रकाश संकेत का जगमगाना प्रारम्भ करती है। मादा की द्युति की आवृत्ति तथा द्युतिकाल भी नर से भिन्न होता है किन्तु एक जाति की मादा का निश्चित होता है। नर उस मादा के उत्तर के द्युति संकेत को पहचानकर उसके पास आ जाता है। इतने छोटे से कीट के कितने अद्‌भुत व्यवहार।

न केवल नर खद्योत अधिक खतरा लेने के लिए रहता है, उसे मालूम है कि उसका जीवन बहुत अल्प है, कोई एक दो रातें। इसलिए उसे संतानोत्पत्ति के कार्य के अतिरिक्त कोई कार्य नहीं सूझता। यहाँ तक कि अनेक खद्योत जाति के नर भोजन नहीं करते, केवल मादाएँ भोजन करती हैं। यहाँ तक कि कुछ मादाएँ दूसरी जाति के खद्योत नरों को धोखा देकर अपने पास बुला लेती हैं और खा जाती हैं। जब हर एक जाति के प्रकाश संकेत निश्चित रूप से तथा जटिल रूप से भिन्न होते हैं, तब यह धोखा कैसे सम्भव है ?

'फोट्‌युरिस' वंश की मादा खद्योत भिन्न वंश की 'फोटिनुस' मादा की आवृत्ति द्युति–काल तथा विलम्ब पैदा कर सकती है। जब उसे भूख लगी होती है और उस समय यदि कोई फोटिनुस जाति का नर अपना द्युति संकेत करता हुआ निकलता है तब वह फोटिनुस मादा का द्युति संकेत पैदा करती है। फोटिनुस नर तुरन्त खिंचा आता है। और उसके आते ही वह मादा उस भोले भाले नर को अचानक धर दबोचती है। यह धर दबोचना संभव हो सकता है क्योंकि नर जब मादा के पास आता है तब अपनी जाति की पहचान को अंतिम बार सुनिश्चित करने के लिए उसे सूँघता है। उनकी सुगंध भी जाति–विशेष होती है, अर्थात् प्रत्येक जाति की अपनी सुगंध होती है। इस सूँघने की प्रक्रिया के समय धोखेबाज तथा तैयार मादा उस कामातुर नर को खा जाती है।

नर तथा मादा खद्योत अपनी द्युतियों पर कुछ नियंत्रण तो कर ही सकते हैं। एक वृक्ष में एक ही स्थान पर कुछ नर खद्योत हों तब अधिकांशतया वे एक साथ द्युति का 'जलना–बुझना' करते हैं– यह दृश्य बहुत मनोहर लगता है। यदि एक सीध में कुछ वृक्ष हों और उन वृक्षों पर एक ही जाति के जुगनू हों, तब तो और भी मनोहर दृश्य प्रस्तुत होते हैं। सारे जुगनू एक वृक्ष के बाद दूसरे फिर तीसरे से अपनी द्युति बारी बारी से आलोकित करते हैं– लगता है मानो प्रकाश की लहर जा रही हो। कभी कभी एक ही वृक्ष पर ऊपर तथा नीचे दो झुण्ड बारी बारी से द्युति पैदा करते हैं। जुगनुओं की नाना द्युतियों को देखकर लगता है कि प्रकृति दीपावली मना रही है।

प्रकृति में केवल जुगनू ही ऐसे ज़ीव नहीं हैं जो द्युति उत्पन्न करते हैं। ऐसे अन्य जीव हैं– जैसे कुछ मछलियों की जातियाँ, कवचधारी जंतु में जुगनुओं के अतिरिक्त क्लिक बीटल आदि भी प्रकाश उत्पन्न करते हैं। एक ऐसा जीव तो रात के अँधेरे में देखने पर लगता है मानो एक एंजिल लाल बत्ती लिए रेलगाड़ी चला आ रहा हो– ऐसे कीट का नाम है रेलवे कीट (रेलगाड़ी कीट, रेल रोडवर्म) इसके शरीर में दो लम्बी धारियों के रूप में प्रकाश उत्पन्न होता है तथा उसके सिर पर लाल प्रकाश।

एयर वाइस मार्शल (सेवानिवृत्त)
ई 143, सेक्टर 21
नोयडा, उत्तर प्रदेश-201301

भौतिकी के नोबेल पुरस्कार की एक शताब्दी

प्रो0 देवेन्द्र कुमार राय

एल्फ्रेड नोबेल ने डायनामाइट की खोज और उसके उत्पादन से बहुत धन उपार्जन किया था। उन्होंने अपने वसीयतनामे में यह इच्छा व्यक्त की थी कि उनके धन से भौतिकी, रसायन, शरीर रचना विज्ञान (या औषधीय) साहित्य और शांति के क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करने वाले व्यक्तियों को पुरस्कार दिए जाएँ। वसीयतनामे की भाषा जटिल और काफी स्थानों पर दुविधापूर्ण थी। अतः नोबेल संस्थान की स्थापना और पुरस्कारों के लिए आवश्यक विधिक कार्यवाई करने में काफी समय लगा। 1900 में नोबेल संस्थान की स्थापना हुई और पुरस्कारों के लिए चयन प्रक्रिया के नियम बने। इसी कारण पहले नोबेल पुरस्कार 1901 में दिए गए। वसीयत के अनुसार वार्षिक पुरस्कार उन व्यक्तियों को दिए जाते थे जिन्होंने पिछले वर्ष में मानवजाति के लाभ के लिए उत्कृष्ट कार्य किया हो। साथ ही यह भी अपेक्षा की गई थी कि पुरस्कारों के चयन में व्यक्ति की राष्ट्रीयता का ध्यान नहीं रखा जाए, जिससे कि पुरस्कार सबसे उपयुक्त व्यक्ति को मिले, चाहे वह स्कैन्डिनेवियन भले ही न हो।

नोबेल पुरस्कार प्रत्येक वर्ष नोबेल के मृत्यु वाले दिन अर्थात् 10 दिसम्बर को स्टाकहोम में दिए जाते हैं। पुरस्कारों के लिए चयन प्रक्रिया काफी जटिल और समयसाध्य होती है। प्रत्येक वर्ष स्वीडेन की शाही विज्ञान अकादमी पुरस्कृत व्यक्ति के चयन के लिए एक समिति बनाती है। इस समिति का एक सदस्य नोबेल संस्थान के उस विषय से संबंधित शाखा का अध्यक्ष होता है। प्रत्येक विषय की समिति अनेकों व्यक्तियों तथा संगठनों से नाम प्रस्तावित करने का अनुरोध करती है। प्रस्तावक मंडल में कुछ सदस्य तो स्थायी होते हैं परन्तु अनेक व्यक्तियों और संघटनों को केवल किसी विशेष वर्ष के लिए नाम प्रस्तावित करने का आमंत्रण दिया जाता है। स्थायी सदस्यों में चयन समिति के सभी सदस्य, स्वीडेन की शाही विज्ञान अकादमी के सदस्य, पिछले वर्षों के नोबेल पुरस्कार विजेता, स्कैन्डिनेवियन देशों के विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक आदि होते हैं। प्रस्तावक मंडल के सदस्य समिति के पास पुरस्कार के लिए व्यक्तियों के नाम तथा उनके कृतित्व के बारे में विवरण भेजते हैं। समिति उनमें से सभी पर विचार करती है और कुछ के बारे में विस्तृत रिपोर्ट तैयार करती है। समिति बाध्य नहीं है कि वह उस व्यक्ति के नाम पर अवश्य विचार करे जिसके नाम का प्रस्तावकों ने बहुमत किया हो। नोबेल संस्थान द्वारा प्रकाशित विवरण से यह प्रकट होता है कि 1940 के पूर्व के वर्षों में तो भौतिकी से संबद्ध समिति ने बहुमत द्वारा प्रस्तावित नाम को कभी अनुमोदित ही नहीं किया। उदाहरणार्थ 1910 में प्वांकेर का (Poincare) नाम 34 लोगों ने प्रस्तावित किया था, प्लांक (Plank) का दस ने किन्तु चयन समिति ने वान डर वाल्स (Van der Waals) का नाम पुरस्कार के लिए अनुमोदित किया जिनके पक्ष में केवल एक प्रस्ताव था। चयन की प्रक्रिया समिति के अनुमोदन के साथ ही समाप्त नहीं होती। स्वीडेन की शाही विज्ञान अकादमी की भौतिकी शाखा तथा संपूर्ण अकादमी द्वारा इस नाम (या इन नामों) को स्वीकृति मिलने के बाद ही चयन प्रक्रिया पूर्ण होती है। यद्यपि विषय समिति के सुझाव को स्वीकृति लगभग सर्वदा ही मिल जाती है परन्तु इसके भी उदाहरण हैं जबकि पूरी अकादमी ने अपने भौतिकी प्रभाग और भौतिकी विषय की चयन समिति की सिफारिशों को अस्वीकृत किया है। 1908 में भौतिकी की विषय समिति और अकादमी की भौतिकी शाखा दोनों ने प्लांक के नाम का अनुमोदन किया था परन्तु अकादमी की साधारण सभा ने इसको अस्वीकार करके

फ्रेंच वैज्ञानिक गैब्रिएल लिपमान (Gabriel Lippman) को नोबेल पुरस्कार प्रदान किया। इसी प्रकार 1912 में चयन समिति और अकादमी की भौतिकी शाखा ने केमरलिंग ओन्स (Kammerlingh Onnes) का नाम अनुमोदित किया पर अकादमी की साधारण सभा ने निल्स गुस्ताव डालेन (Nils Gustav Dalen) नामक स्वीडिश वैज्ञानिक को पुरस्कार के लिए उपयुक्त माना। अधिकांश भौतिकविदों को यह नाम अटपटा लगेगा क्योंकि डालेन ने स्वचालित नियंत्रण प्रणाली (Automatic regulation) का आविष्कार किया था जो कि प्रकाश स्तंभों और तैरती हुई बोया (जो जहाजों और नावों को खतरे से बचाने के लिए समुद्र पर तैरती रहती है) के लिए गैसीय संचालकों के उपयुक्त थी। अकादमी ऐसा निर्णय ले सकती है कि उस वर्ष कोई पुरस्कार न दिया जाए और उस वर्ष का पुरस्कार अगले वर्ष के पुरस्कारों के साथ दिया जाए। आइन्स्टाइन को इसी नियम के तहत 1921 का पुरस्कार 1922 में मिला। भौतिकी के लिए वर्ष 1916, 1934, 1940, 1941 तथा 1942 में कोई पुरस्कार नहीं दिए गए।

नोबेल पुरस्कारों की मर्यादा प्रारंभ से ही अधिक रही है। इसका एक कारण तो यह रहा है कि पुरस्कार की राशि प्रारंभ से ही अपेक्षाकृत अधिक रही है। 1901 में एक पुरस्कार की राशि 40000 डालर के समतुल्य थी जो उस समय के किसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर की वार्षिक आय से लगभग 30 गुना अधिक थी। साथ ही चुनाव की प्रक्रिया से सफल घोषित वैज्ञानिक को सदैव ही भौतिकी क्षेत्र के सभी वैज्ञानिकों द्वारा एक उत्तम वैज्ञानिक मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं रहती है। केवल एकाध वर्ष के पुरस्कारों के बारे में ही यह धारणा बनी कि वे त्रुटिपूर्ण या विचित्र (समझ न आने योग्य) हैं। साथ ही कम से कम विज्ञान के लिए दिए गए पुरस्कारों में क्षेत्रीय, भाषायी या राजनीतिक दृष्टि से किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं देखा गया है। साहित्य और शांति के लिए दिए गए पुरस्कारों के लिए इस प्रकार की बात नहीं कही जा सकती है। ऐसा नहीं था कि पुरस्कृत किए गए व्यक्ति का चुनाव राजनीति से बिल्कुल अछूता रहा हो, परन्तु पुरस्कार का चयन सर्वदा वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित रहा है और उसमें किसी वाद का प्रभाव नहीं रहा है। पुरस्कारों को कुछ हद तक विभिन्न देशों के बीच भी प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से देखा गया है क्योंकि ये पुरस्कार व्यक्ति के साथ साथ जिस देश का वह नागरिक है, उसे भी महत्ता प्रदान करते रहे हैं। स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय वैज्ञानिक सर चंद्रशेखर वेंकट रामन को पुरस्कार देते समय उनके पीछे ब्रिटेन का राष्ट्रीय ध्वज था। रामन ने लिखा है कि इस तथ्य से वे अत्यंत ही मर्माहत हुए थे कि उनके देश के पास अपना ध्वज नहीं था। नोबेल पुरस्कारों की चयन समितियाँ इस बात के लिए सर्वदा सतर्क रही हैं कि किसी ऐसे प्रायोगिक परिणाम या सिद्धान्त को पुरस्कृत न किया जाए जिसकी पुष्टि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपलब्ध न हो। 1903 और 1905 में क्रमशः N-किरणों के लिए फ्रेंच वैज्ञानिक ले बोन (Le Bon) और ब्लांडलाट (Blondlot) के नाम प्रस्तावित किए गए थे, परन्तु चयन समिति ने इनके प्रयोगों को संदेहास्पद मानकर इनका नाम अनुमोदित नहीं किया।

नोबेल के वसीयतनामे की संशयात्मक भाषा के कारण चयन समिति को यह निर्धारित करने में कि किस प्रकार के शोध कार्य पर यह पुरस्कार दिया जाए, कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। कभी कभी इन प्रावधानों की व्याख्या करने में कुछ मनमानीपन भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, नोबेल की वसीयत का वह अंश जिसके अनुसार पुरस्कार दिए जाने के वर्ष के पिछले वर्ष के कार्य को ही मान्यता दी जाती थी, उसे नोबेल संस्थान ने अधिक लचीला मानते हुए, ऐसे कार्यों के लिए भी पुरस्कार दिए जो कि पुरस्कार के वर्ष के अनेकों वर्ष पूर्व किए गए थे। रान्जेन को जब पहला पुरस्कार 1901 में दिया गया तो उसकी खोज लगभग 5 वर्ष पुरानी हो चुकी थी, फिर भी पुरस्कारों के पहले दो दशकों में पुरस्कृत शोध की महत्ता को आँकने के बाद उन्हें अतिशीघ्र पुरस्कृत करने का प्रयास किया जाता था। शायद इसी कारण बोल्ट्जमान (Boltzman) और केल्विन (Kelvin) को नोबेल पुरस्कार नहीं दिया गया परन्तु बाद में ऐसा प्रयास नहीं हुआ और अनेक वैज्ञानिकों को उनके वर्षों पूर्व किए गए कार्यों के लिए पुरस्कृत किया गया। राइन्स (Reines) जिन्हें 1995 में नोबेल पुरस्कार मिला। उन्होंने न्यूट्रिनों का सत्यापन

लगभग 39 वर्ष पूर्व 1956 में किया था। चंद्रशेखर जिन्हें 1983 का नोबेल पुरस्कार मिला उनका पुरस्कृत शोधकार्य लगभग 45–50 वर्ष पूर्व किया गया था। इसी प्रकार कैपिटजा (Kaptiza), बोर्न (Born), बेथे (Bethe), वान क्लेव (Von Clave) आदि अनेक भौतिकी वैज्ञानिकों को उनके पुरस्कृत शोधकार्य के प्रकाशन के वर्षों बाद ही पुरस्कृत किया गया।

यद्यपि शुद्ध रूप से प्रौद्योगिकी उन्नयन के लिए नोबेल पुरस्कार लगभग नहीं दिए गए हैं (हालाँकि कुछ विशिष्ट पुरस्कार, जैसे वर्ष 2000 के लिए जैक सेंटक्लेयर किर्बी को मिला पुरस्कार आदि इस कोटि में आ सकते हैं) फिर भी नोबेल संस्थान ने औद्योगिक संस्थानों में काम करने वाले वैज्ञानिकों के साथ कोई भेदभाव नहीं किया है। इसके उदाहरण हैं डेविसन को 1937 में पुरस्कृत कार्य जो कि उन्होंने बेल प्रयोगशाला में रहते किया था, 1986 में ई. रुस्का (E. Ruska), एस रोहरर (H. Rohrer) तथा जी. बिनिंग (G.Bining) को मिला पुरस्कार उस कार्य के लिए दिया गया था जो इन वैज्ञानिकों ने औद्योगिक संस्थानों सीमेंस (Siemens) तथा आई.बी.एम. (IBM) की प्रयोगशालाओं में किया था। किर्बी भी औद्योगिक संस्थान से ही जुड़े थे।

भौतिक शास्त्र के क्षेत्र को परिभाषित करने में नोबेल संस्थान ने पहले तो पर्याप्त लचीला रुख अपनाया था और खगोल शास्त्र, मौसम विज्ञान, भूभौतिकी, भौतिक रसायन आदि सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट शोध को विचार में रखा था, परन्तु बाद में इसमें कुछ परिवर्तन आया और खगोल विद्या तथा भौतिकी से संबंधित विषयों को इससे बाहर निकाल दिया गया। किसी विशेष क्षेत्र के कार्य पर विचार किया जाय या नहीं यह बहुधा चयन समिति के सदस्यों के वैयक्तिक विचारों द्वारा निर्धारित होता रहा है। अतः इस प्रकार के चुनाव में कुछ परिवर्तनशीलता देखने को मिलती है। खगोल भौतिकी के क्षेत्र में पहला पुरस्कार हांस ए बेथे (Hans A Bethe) को 1967 में मिला जबकि वह शोधकार्य लगभग 30 वर्ष पूर्व किया गया था। इसके बाद तो अनेक ऐसे पुरस्कार दिए गए। 1974 से 1993 के बीच सात ऐसे पुरस्कार हैं जिन्हें खगोल भौतिकी के क्षेत्र में मानना अधिक उपयुक्त होगा।

भौतिकी और रसायन शास्त्र के बीच विभाजन रेखा खींचना इन विषयों से संबंधित चयन समितियों के लिए टेढ़ी खीर रहा है। इस कठिनाई का लाभ कुछ अर्थों में भौतिकीविदों को ही मिला है। भौतिकी के पुरस्कारों में शायद पेरिन (Perrin) को 1926 में दिया गया पुरस्कार ही एकमात्र ऐसा है जिसके कुछ हद तक रसायन शास्त्र के अधिक निकट माना जा सकता है। इसके विपरीत 1908 में रदरफोर्ड (Rutherford) से लेकर 1977 में प्रिगोजीन (Prigogine) तक अनेक ऐसे वैज्ञानिकों को रसायनशास्त्र का नोबेल पुरस्कार मिला है जिनका पुरस्कृत शोध भौतिकी का विषय भी माना जा सकता है। इन वैज्ञानिकों में से अनेक तो शुद्ध भौतिकी के विद्यार्थी और भौतिकी विभागों से सम्बद्ध रहे हैं। स्पेक्ट्रोस्कोपी के क्षेत्र में पीटर डिबाई (P. Debye), आर.एस. मुलिकन (R.S. Mullikan), जी. हर्जबर्ग (G. Herzberg) जीवनपर्यन्त भौतिकी की प्रयोगशालाओं में कार्य कर रहे हैं पर सभी को रसायन शास्त्र का नोबेल पुरस्कार मिला। यहाँ तक कि मैक्स डेलबक (Max Delbuck) को तो चिकित्सा (शरीर क्रिया विज्ञान) के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार दिया गया है।

1920 के पूर्व के वर्षों में सैद्धान्तिक शोध को नोबेल पुरस्कार चयन समिति ने उचित प्रतिनिधित्व नहीं दिया था। हालाँकि ऐसा भी नहीं था कि इन विषयों पर पुरस्कार दिए ही नहीं गए। लोरेन्ट्ज (Lorentz, 1902), विम्ल्हेल्म वीन (W. Wien, 1911) तथा प्लांक (Plank, 1918) सभी पुरस्कृत किए गए थे। परन्तु आइंस्टाइन को जिन्हें 1921 का नोबेल पुरस्कार 1922 में दिया गया था इसके पूर्व के वर्षों में भी उन्हें अनेक लोगों ने प्रस्तावित किया जा चुका था फिर भी चयन समिति ने इनके नाम का अनुमोदन नहीं किया। 1922 में भी इन्हें आपेक्षिकता के सिद्धान्त के विकास के लिए पुरस्कृत नहीं किया गया, वरन् प्रकाशविद्युत प्रभाव के नियम के उद्घाटन के लिए नोबेल पुरस्कार दिया गया। सम्मान पत्र में उनके फोटान सिद्धान्त को भी अधिक महत्व नहीं दिया गया था जबकि आइन्स्टाइन का नाम इन सैद्धान्तिक विवेचनों के कारण ही अमरत्व को प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार हाइजेनबर्ग (Heisenberg), श्रोडिंगर (Schrodinger) तथा डिराक (Dirac) को नोबेल पुरस्कार

काफी विचार–मंथन के बाद ही दिए गए।

नोबेल पुरस्कारों की प्रतिष्ठा और इनको प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के शोध की उत्कृष्टता के बारे में तो अधिक विवाद नहीं उठे हैं परन्तु कभी कभी ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ व्यक्तियों के साथ नाइन्साफी हुई है। कभी कभी तो ऐसा शोधकार्य की समाप्ति और पुरस्कार की तिथि के वृहत काल–अन्तराल के कारण हुआ है। उदाहरण के लिए 1995 में मार्टिन पर्ल (Martin Perl) को टाउ लेप्टान की खोज और फ्रेडरिक राइन्स (Fredrick Reines) को न्यूट्रिनों के सत्यापन के लिए पुरस्कृत किया गया। न्यूट्रिनों के सत्यापन वाले प्रयासों में राइन्स के साथ कोवन (Cowan) ने 1950 के दशक में लगातार कार्य किया था परन्तु नोबेल पुरस्कार में 40 वर्ष की देर हुई। इस बीच कोवन की मृत्यु हो गई थी और वे नोबेल पुरस्कार नहीं पा सके थे।

नोबेल समिति ने अनेक बार किसी तथ्य की प्रागुक्ति और उसके प्रायोगिक सत्यापन दोनों ही कार्यो के लिए नोबेल पुरस्कार दिया है। उदाहरण के लिए 1929 में प्रिंस डि ब्रायग्ली (Prince de Broglie) को इलेक्ट्रान की तरंग प्रकृति के सैद्धान्तिक उद्घाटन के लिए और 1937 में डेविसन (Davisson) और जी.पी. टामसन (G.P. Thomson) को इसे प्रायोगिक सत्यापन के लिए पुरस्कृत किया। परन्तु 1957 में ली और यांग (Lee and Yang) को पैरिटी संरक्षण की वैधता को सैद्धान्तिक चुनौती देने के लिए तो पुरस्कृत किया गया परन्तु मदाम वू (Madam Wu) जिनके प्रयोगों ने ली और यांग की प्रागुक्ति को प्रयोग द्वारा सत्यापित किया उन्हें पुरस्कार में अंश नहीं दिया गया। ऐसा नहीं था कि तीन व्यक्तियों को एकसाथ पुरस्कृत करने के विरुद्ध कोई नियम था। शायद यह समिति के सदस्यों की स्त्री वैज्ञानिकों के प्रति भावना का परिचायक रहा हो। इसी प्रकार 1944 में ओटोहान (Ottohann) को रसायन शास्त्र का पुरस्कार नाभिकीय विखंडन की प्रायोगिक खोज के लिए दिया गया परन्तु उसमें भी हान के अनेक वर्षों की सहकर्मी लिऐ मिटनर (Lese Meitner) को शामिल नहीं किया गया। यहाँ पर यह रखना आवश्यक है कि मिटनर और फ्रिश (Frisch) ने ही हान (Hahn) के प्रयोगों की सर्वप्रथम उचित व्याख्या प्रस्तुत की जिसके आधार पर ही आगे की प्रगति संभव हो सकी। राबर्ट विल्सन (Robert Wilson) और एर्नो पेन्जिआस (A. Penzias) को पुरस्कार राशि का आधा भाग दिया गया था परन्तु जार्ज गैमो (George Gamow) तथा उनके विद्यार्थी ब्रह्माण्डीय माइक्रोवेव विकिरण के अस्तित्व की सर्वप्रथम प्रागुक्ति को भी वे भुला दिए गए थे। ऐसे अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं।

मानवजाति के कल्याण (benefit of mankind) का प्रारंभ में यह अर्थ लगाया गया कि प्रयुक्त भौतिकी (applied physics) के क्षेत्र को भी पुरस्कारों की परिधि में रखा जा सकता है। 1909 में दिया गया पुरस्कार बेतार के तार (Wireless Telegraphy) के लिए मारकोनी को दिया गया था। 1908 का पुरस्कार जैसा पहले लिखा जा चुका है रंगीन छायाचित्रों के बनाने की विधि के आविष्कार के लिए लिपमैन को तथा 1912 का पुरस्कार स्वीडिश इंजीनियर को प्रकाश संयंत्रों के लिए स्वचालित प्रकाश व्यवस्था के विकास के लिए दिया गया था। 1901 में ही नोबेल संस्थान ने यह निर्णय लिया था कि जिन आविष्कारों का पेटेन्ट कराया गया है, उनपर पुरस्कार नहीं दिया जाएगा, अतः थामस एडिसन (Thomas Edison) जैसे आविष्कारक को इससे वंचित रखा गया। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि मारकोनी से पूर्व ही सर जगदीश चंद्र बसु (J.C.Bose) ने बेतार के तार की विधि से संकेत भेजने में सफलता प्राप्त की थी और अपनी विधि का उन्होंने प्रदर्शन भी किया था, परन्तु उन्हें मारकोनी और ब्राउन (Brown) के साथ पुरस्कार में सहभागी नहीं बनाया गया था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि मारकोनी और ब्राउन दोनों ने अपने द्वारा विकसित यंत्रों का पेटेन्ट कराया और उसके आधार पर वृहत उद्योग स्थापित किए। हो सकता है कि इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर नोबेल संस्थान ने 1912 के बाद प्रौद्योगिक आविष्कारों के लिए पुरस्कार देना ही बंद कर दिया। इसके परिणामस्वरूप एडिसन के साथ ही अनेक महत्वपूर्ण आविष्कारक जैसे वान लिंडे (Van Leinde) जिन्होंने रेफ्रीजरेटर मशीनों का विकास किया, जेपेलिन (Zepplin) जिन्होंने गैस भरी हुई हवाई जहाजों को विकिसत किया, आरविले और विलबर राइट (Orville and Wilber Right) जिन्होंने सर्वप्रथम हवा से भारी

उड़ने वाली मशीनें बनाईं, आदि किसी को भी नोबेल पुरस्कार नहीं मिला।

चयन समिति ने वसीयत की शर्तों की जो सबसे महत्वपूर्ण और व्यापक व्याख्या की उसमें यह मानना था कि मूलभूत विज्ञान में कोई भी महत्वपूर्ण विकास मानवता के कल्याण के लिए ही होता है और इस कारण मूलभूत भौतिकी के क्षेत्र में जो भी महत्वपूर्ण शोधकार्य हैं वे सभी पुरस्कार के लिए विचारयोग्य हैं। यही कारण था कि 1902 में दिए जाने वाले दूसरे ही पुरस्कार में चयन समिति को जीमन (Zeeman) के साथ ही लोरेन्ज (Lorentz) जिन्होंने ज़ीमन प्रभाव की सैद्धान्तिक व्याख्या दी थी– को भी पुरस्कार से अलंकृत करने में कोई झिझक नहीं हुई। शुद्ध रूप से सैद्धान्तिक विकास के लिए तो बाद में सर्वाधिक नोबेल पुरस्कार दिए गए हैं। कुल मिलाकर यह कहना उचित होगा कि नोबेल संस्थान ने नोबेल पुरस्कारों के वितरण में कम से कम भौतिकी के क्षेत्र में एल्फ्रेड नोबेल की वसीयत की मूलभूत धारणा को बरकरार रखा गया है। उनके चुनाव की उत्कृष्टता प्रायः असंदिग्ध बनी रही है और यह उचित ही है कि प्रत्येक अच्छी प्रयोगशाला और वैज्ञानिक दृष्टि से विकसित राष्ट्र में इस बात की आकांक्षा रही है कि उसके वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार से अलंकृत किया ाए।

अध्यक्ष
भौतिकी विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

पृष्ठ 4 का शेष ..

अधिक हो चुकी थी। इसलिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों में जीन क्रमों, जैव प्रौद्योगिकीय तकनीकों आदि के पेटन्ट हासिल करने की होड़ मची है। विकसित देशों, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में कई अतिव्यापक पेटेंट जारी किए जा रहे हैं। ऐसे पेटेंटों द्वारा ये कंपनियाँ फसलों पर होने वाले जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधानों की दिशा एवं दशा को नियंत्रित कर सकती हैं। ऐसी दशा में विश्व खाद्य सुरक्षा पर प्रश्नचिन्ह लग सकता है।

इसके साथ ही अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विकासशील देशों की जैव संपदा का भी पेटेंट हासिल कर रही हैं। इसका एक उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका की राइस टेक कंपनी द्वारा एक ऐसा पेटेंट हासिल किया जाना है, जिसमें बासमती चावल का संपूर्ण जनन द्रव्य शामिल है। इस प्रकार की जैव दस्युता (Piracy) के अनेकों उदाहरण हैं। इसे रोक पाने या कम करने के कारगर उपाय प्रत्येक जैव संपदा समृद्ध देश के लिए अत्यंत आवश्यक हैं, अन्यथा ये देश अपनी बहुमूल्य जैव संपदा को केवल देखकर आनंद लेने के अधिकारी ही रह पाएँगे।

मोटापा घटाने वाले हार्मोन

वैज्ञानिकों ने एक ऐसे हार्मोन का पता लगाया है, जो मोटापा कम करने में सहायक हो सकता है। मानव जब भोजन करता है तो यह हार्मोन आँतों में बनता है, और यह मस्तिष्क की क्षुधा तृप्त होने का संदेश देता है। इस हार्मोन का इंजेक्शन लेने के बाद भोजन करने वाले लोगों द्वारा सामान्य की तुलना में एक तिहाई कम भोजन किया गया। यह आशा की जा रही है कि इस हार्मोन के सेवन से मोटे हो रहे लोग सामान्य की तुलना में कम भोजन करेंगे और इससे उनका वजन धीरे धीरे घटेगा। चूँकि यह हार्मोन प्राकृतिक रूप से क्षुधा तृप्ति का प्रेरक है, अतः इसके सफल होने की काफी उम्मीद की जा रही है। स्पष्ट रूप से इस हार्मोन का बड़े पैमाने पर उत्पादन पुनर्योगज DNA टेक्नोलॉजी द्वारा किया जाएगा।

संयोजक
स्कूल ऑफ बायोटेक्नोलॉजी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

मंगल ग्रह : 2020 तक

सुश्री रुफ़िया

ग्रह का विवरण:

व्यास	6755.2 किलोमीटर।
चन्द्रमा	2
सूर्य से औसत दूरी	22.56 करोड़ किलोमीटर।
सूर्य का प्रदक्षिणा काल	687 दिन।
भूमि का रंग	गुलाबी।
भूमि पर है	चट्टान और शिलाखण्ड।
भूतकाल में भूमि	सतह पर गड्ढे, ज्वालामुखी और ऐसी घाटियाँ हैं जिनसे पता चलता है कि यहाँ पर कभी पानी का मुक्त बहाव था।
वर्तमान में भूमि	निर्जन।

मानव अभियान :

सन् 1962	:	मार्स–1 मंगल ग्रह के पास से गुजरा।
सन् 1964	:	मेरीनर–4 ने मंगल ग्रह के चित्र उतारे।
सन् 1971	:	मार्स–2 मंगल ग्रह पर उतरा।
सन् 1976	:	वाइकिंग–1 ने मंगल की भूमि पर पहली बार चित्र खींचे।
सन् 1992	:	मार्स ऑब्ज़र्वर द्वारा मंगल से संबंधित अधिक जानकारी।
सन् 1996	:	मार्स ग्लोबल सर्वेयर मंगल की सतह पर नमूने जमा कर बर्फ या जल की उपस्थिति का पता लगाना।
सन् 1999	:	मार्स पोलर लैण्डर असफल।
सन् 2001	:	मार्स ओडिसी रोबोटों की सहायता से मंगल पर खोज।
21 जून 2001	:	इस दिन पृथ्वी मंगल ग्रह से मात्र 6.8 करोड़ किलोमीटर दूर थी। पिछले 15 वर्षों में यह दोनों ग्रहों के बीच की सबसे कम दूरी थी।
सन् 2007	:	जीन अभियान्त्रिकी बीजों की पहली खेप व जेली फिश के अण्डे 2007 में मंगल पर भेजे जाएंगे।
सन् 2020	:	अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' के प्रमुख डेनियल गोइडिन के अनुसार 2020 तक अमेरिका मानव को मंगल ग्रह पर उतरेगा।

67, अण्टा, मोहिनी स्कूल के पास,
शाहजहाँपुर

एलर्जी : समस्या और समाधान

✍ डॉ० जे.एल. अग्रवाल

शरीर के अंदर कोई भी विजातीय वाह्य तत्व के प्रवेश करने पर शरीर की प्रतिरक्षा सक्रिय हो जाती है, और इन हानिकारक तत्वों को निष्क्रिय करने का प्रयास करती है। शरीर की इस प्रतिरक्षा क्षमता को 'इम्युनिटी' कहा जाता है। इम्युनिटी के कारण शरीर अनेकानेक हानिकारक जीवाणुओं से बचा रहता है। पर कभी कभी बाह्य तत्व जिनको 'एंटीजन' कहा जाता है के विरुद्ध संवेदनशीलता होने पर शरीर की इम्यूनिटी असामान्य व्यवहार करने लगती है जिसमें प्रतिक्रियास्वरूप ऊतक, अंग क्षति ग्रस्त हो सकते हैं और वह व्यक्ति अनेक रोगों से ग्रस्त हो सकते हैं। ये रोग 'एलर्जी रोग' कहलाते हैं और रोग उत्पन्न करने वाले तत्व 'एलर्जन' कहलाते हैं।

एलर्जी के लक्षण अनेक रूपों में हो सकते हैं। यह लक्षण साधारण से लेकर कभी कभी जानलेवा भी हो सकते हैं। अनुमान है कि सभी व्यक्ति किसी न किसी तत्व से एलर्जिक हो सकते हैं। एलर्जी के कारण छींक, जुकाम, आँखों से पानी निकलना, नाक बंद होना, दमा, खाँसी, इत्यादि होते हैं। दवाओं, कुछ रसायनों से एलर्जी होने से एनाफाइलेमिस शॉक के कारण मौत तक हो सकती है।

जैसे एलर्जी के लक्षण विविध रूप में होते हैं वैसे ही एलर्जन भी संख्या में अनगिनत हो सकते हैं। पर ये दो समूह में विभक्त किए जा सकते हैं– 'बाह्य एलर्जन' और 'आन्तरिक एलर्जन'। बाह्य एलर्जन त्वचा या श्वास द्वारा श्वसन तन्त्र को प्रभावित करते हैं जबकि आन्तरिक एलर्जन भोजन के माध्यम से शरीर में पहुँचकर प्रतिक्रिया करते हैं।

दवाइयाँ, धूल, परागकण, पक्षियों के पंख, पशुओं की खाल, बाल, मल, मूत्र, सौन्दर्य प्रसाधन, रसायन, धुआँ, वातावरण में मौजूद प्रदूषित तत्व, जीवाणु, पौधे, इत्यादि व्यक्तियों में एलर्जी उत्पन्न कर सकते हैं। इसी तरह कोई भी खाद्य पदार्थ, भोजन में मौजूद प्रदूषित तत्व, रसायन से एलर्जी की समस्या हो सकती है। अति संवेदनशील व्यक्तियों को गर्मी, ठंडक, सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों इत्यादि से भी एलर्जी हो सकती है।

कुछ हद तक एलर्जी आनुवांशिक होती है। यदि माता–पिता दोनों ही एलर्जीग्रस्त हैं तो उनके 90 प्रतिशत बच्चों में एलर्जी की प्रवृत्ति होगी। यदि माता पिता में एक को एलर्जी है तो लगभग 35 प्रतिशत संतानों के एलर्जीग्रस्त होने का भय रहता है। एलर्जी ग्रसित माता पिता की संतानों में उन्हीं के समान या दूसरे तत्व से एलर्जी हो सकती है। कुछ को एक से या फिर कुछ में कई तत्वों से एकसाथ एलर्जी हो सकती है।

एलर्जी के कारण होने वाली प्रमुख समस्याएँ :

दमा : यह एलर्जी का गंभीर रूप है। इन मरीजों में श्वसन तन्त्र के अतिसंवेदनशील होने से, आने

एलर्जी कारक तत्वों के सम्पर्क में आने पर श्वसन नलियाँ सिकुड़ जाती हैं, जिससे मरीज को श्वास फूलने के दौरे पड़ते हैं, मरीज को चलने, कार्य करने में दिक्कत होती है, दौरे के मध्य मरीज शुरुआत में पूर्णतः स्वस्थ रहते हैं पर बाद में रोग पुराना होने पर फेफड़ों के क्षतिग्रस्त होने से कार्यक्षमता कम हो जाती है। एलर्जी के कारण दमा बचपन में यदि शुरू होता है तो यह युवावस्था तक ठीक हो सकता है पर युवावस्था में शुरू होने वाला दमा प्रायः जीवनपर्यन्त का रोग होता है।

जुकाम : यह एलर्जी का सबसे सामान्य रूप है। एलर्जन के सम्पर्क में आने पर नाक बहना, खुजली, नाक बंद होना, छींके आना, आँखों से पानी, लाली, इत्यादि समस्याएँ हो सकती हैं। यह रोग 'एलर्जिक राइनाइटिस' कहलाता है, लक्षणों के कारण मरीज बेचैन हो जाते हैं, एकाग्रता नहीं रह पाती। कुछ मरीजों में यह बढ़ कर दमा का रूप ले सकता है। जुकाम अनेक तत्वों से एलर्जी के कारण हो सकती है– गर्मी, ठंडक, आर्द्रता, धूल, परागकण, खुशबू, माइट, वातावरण प्रदूषण इत्यादि के कारण जुकाम हो सकता है।

यदि परागकणों के कारण जुकाम होता है तो यह रोग हे–फीवर कहलाता है। शुरुआत में तो इन मरीजों को परागकण विशेषकर घास के परागकणों के सम्पर्क में आने पर जुकाम की समस्या होती है, पर बाद में यह दमा का भी रूप ले सकती है।

त्वचा की एलर्जी : स्पर्श के कारण होने वाली एलर्जी के कारण एलर्जन के सम्पर्क में आने से चकत्ते या दाने हो सकते हैं जिनमें खुजली होती है। बार बार और लम्बे समय तक एलर्जीकारक तत्व के सम्पर्क में रहने से त्वचा मोटी, खुरखुरी हो जाती है, जिनमें दाने पड़ जाते हैं पानी निकलता है, खुजली होती है जिसे दाद (एक्जिमा) कहते हैं। एक्जिमा भी घटता–बढ़ता जीवनपर्यन्त बना रहता है।

भोज्य पदार्थो से एलर्जी : संवेदनशील व्यक्तियों में किसी भी एक या कई भोज्य तत्वों से एलर्जी हो सकती है जिसके कारण उल्टी, पेट दर्द, पेट फूलना, कब्ज,दस्त, अपच इत्यादि समस्याएँ हो सकती हैं। भोज्य पदार्थों से एलर्जी किसी एक भोज्य पदार्थ, या भोजन में मौजूद प्रदूषित तत्व, रसायन के कारण हो सकती है। अक्सर खाद्य पदार्थों से एलर्जी होने से त्वचा पर पित्ती उभर सकती है जो कि 'आर्टिकेरिया' कहलाती है। कुछ व्यक्तियों में किसी भोज्य पदार्थ को कच्चा सेवन करने से एलर्जी होती है, पर उन्हीं को पका लेने से समस्या नहीं होती। भोज्य पदार्थों से एलर्जी के कारण मरीज परेशान व दुःखी रहते हैं।

दवा, रसायन से एलर्जी : दवाओं का सेवन स्वस्थ होने के लिए किया जाता है, पर कोई भी व्यक्ति किसी भी एक या अनेक दवाओं से एलर्जीग्रस्त हो सकता है। एलर्जी के कारण, त्वचा के दाने, चकत्ते हो सकते हैं जिनमें खुजली होती है, या फिर इन मरीजों में अपच की समस्या हो सकती है। यदि ज्ञात है कि आप किसी दवा से एलर्जन हैं तो चिकित्सक से परामर्श लेते समय इसकी जानकारी अवश्य दें।

एनाफाइलेक्सिस : यह एलर्जी का सबसे भयंकर घातक स्वरूप है। कुछ व्यक्तियों में कुछ दवाओं रसायन के सम्पर्क में आने पर एलर्जन के प्रभाव से शरीर से कुछ रसायन स्रावित होने लगते हैं जिससे मरीजों का रक्तचाप अचानक कम हो जाता है, वे बेहोश हो सकते हैं, श्वास नली के अत्यधिक संकुचित होने से मरीज का दम घुटने लगता है, समय से समुचित उपचार न मिलने से मौत हो जाती है।

एलर्जी की पहचान : यदि एलर्जी की समस्या है तो एलर्जन की पहचान करने का प्रयास करें। यदि प्रयास करें तो संभव है कि किस तत्व, भोज्य पदार्थ, मौसम, रसायन, दवा के कारण एलर्जी की समस्या होगी।

एलर्जन की पहचान त्वचा में एलर्जी टेस्ट द्वारा भी की जा सकती है। स्किन एलर्जी टेस्ट में विभिन्न तत्वों के अर्क को सुई द्वारा त्वचा में लगाया जाता है यदि किसी विशिष्ट तत्व से एलर्जी है तो उस तत्व के इंजेक्शन लगने के बाद उस स्थान पर सूजन और लाली आ जाती है। एलर्जी टेस्ट जटिल और लम्बी प्रक्रिया है, क्योंकि एलर्जन अनगिनत हो सकते हैं। तो संभव है कि पूरा परिश्रम व्यर्थ हो जाए।

यदि एलर्जन का पता लग जाता है तो एलर्जीकारक तत्व से अर्क के इन्जेक्शन को धीरे धीरे बढ़ती मात्रा में लगने से संभव है शरीर की संवेदनशीलता कम हो जाए और एलर्जी की समस्या से स्थायी रूप से निजात मिल जाए।

समाधान : यदि एलर्जीकारक तत्व का पता लग जाए तो यथासंभव उसके उपयोग या संपर्क में
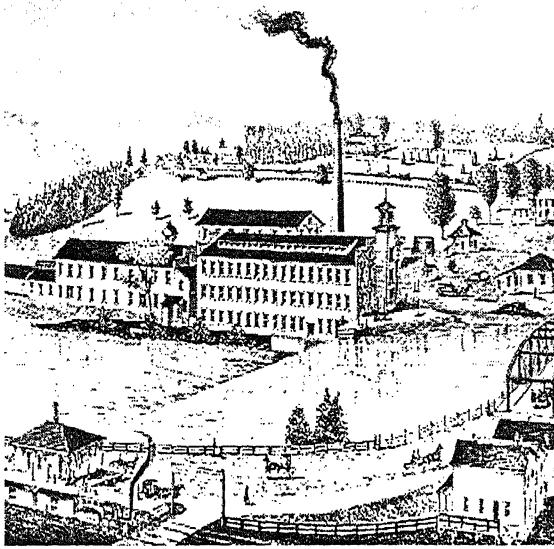
आने से बचें। पर अक्सर पहचानने के बावजूद भी एलर्जन से बचाव संभव नहीं होता। यदि एलर्जन का पता नहीं है अथवा उनसे सम्पर्क/उपयोग से बचाव संभव नहीं है तो इन व्यक्तियों को एलर्जी की समस्याओं को सहन करने के लिए अभ्यस्त होने का प्रयास करना चाहिए।

नवजात शिशु को स्तनपान कराने से तथा जन्म के प्रथम चार माह तक अन्न न देने से बचपन तथा वयस्कों में एलर्जी की संभावना कम हो जाती है। यदि माता पिता एलर्जीग्रस्त हैं, या बच्चे एलर्जी, दमा ग्रस्त हैं तो घर में पालतू जानवर न पालें, घर को स्वच्छ रखें, धूल न जमा होने दें। घर के अन्दर धूम्रपान न करें, घर में धुआँरहित ईंधन का प्रयोग करें। किचन में एक्जास्ट लगवाएँ। घर में विशेषकर सोने के कमरे में धूप और हवा आने की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। सोने के बिस्तर की चादर, गिलाफ, खोल को साफ रखें। यदि छोटे बच्चे एलर्जीग्रस्त हैं तो इनको स्वच्छ सूती कपड़े से ढकें। भोजन सन्तुलित पर्याप्त मात्रा में करें। मानसिक तनाव से बचें, तनाव भी रोग को गंभीर बना सकते हैं। कुछ व्यक्तियों में मानसिक तनाव के कारण भी एलर्जी के लक्षण हो सकते हैं। विटामिन सी का भोजन में ज्यादा मात्रा में सेवन करें, यह विटामिन आँवला, अमरूद, संतरा, मुसम्बी, नींबू में पाया जाता है। यह शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ा देता है।

एलर्जी रोग के लक्षणों में एलर्जी दूर करने वाली एण्टीहिस्टामिन (एण्टीएलर्जिक) दवाओं के सेवन से राहत मिलती है पर दमा के मरीजों को श्वसन नलियों को फैलाने वाली दवाओं (ब्रान्कोडायलेटर जैसे एस्थलिन इत्यादि) के सेवन से राहत मिलती है। गंभीर समस्या या दवाएँ प्रभावी होने पर इन मरीजों को कार्टीसोन दवाओं की गोलियों, मलहम, इन्जेक्शन का सेवन चिकित्सक से परामर्श करके करना चाहिए। यदि दवाओं के कारण एनाफाइलेक्सिस के लक्षण होते हैं तो इनको तुरन्त चिकित्सक के पास ले जाएँ, देरी जानलेवा हो सकती है।

एलर्जी के उपचार के लिए सामूहिक चिकित्सा, कटिस्नान आदि भी कुछ मरीजों के लिए लाभकारी हो सकता है।

एलर्जी शारीरिक प्रतिरोधक क्षमता के अतिसंवेदनशील हो जाने के कारण होती है। एलर्जी की बार बार पुनरावृत्ति होने से घातक दुष्प्रभाव हो सकते हैं। बार–बार एलर्जी ग्रस्त होने से शरीर का सुरक्षा तन्त्र कमजोर हो जाता है, शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी क्षतिग्रस्त हो जाती है जिससे संक्रामक रोगों से ग्रसित होने का खतरा ज्यादा हो जाता है।

एलर्जी का अटैक लगातार हो सकता है। अटैक होने या पूर्वाभास होने पर दवाइयों का सेवन शुरू कर देना चाहिए जिससे अटैक न हो या हल्का सहनीय हो, कष्टों से राहत मिले। ज्यादातर मरीजों में एलर्जी का स्थायी उपचार संभव नहीं हो पाता है। इनको एलर्जी की समस्याओं को सहन करने का अभ्यस्त होना ही पड़ता है।

मेडिकल कालेज
कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)-176001

भूल सुधार

सितम्बर 2002 अंक में पृष्ठ 20 पर गर्माती धरती लेख के लेखक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव तथा पृष्ठ 39 पर ज्योतिष विवेक लेख के लेखक आचार्य वेदव्रत मीमांसक हैं। इन त्रुटियों के लिए हमें खेद है।

सूक्ष्मजीवाणुओं का कृषि व जीवन विकास में महत्व

शिवेन्द्र कुमार पांडे

पृथ्वी पर जीवित रह कर विकास करने के लिए हवा और पानी के पश्चात् भोजन द्वारा ऊर्जा प्राप्त करते रहना, मनुष्य के साथ–साथ अन्य सभी प्राणियों के लिए आवश्यक कर्म है, चाहे वे पेड़ पौधे, पशु पक्षी या छोटे मोटे सूक्ष्म कीड़े मकोड़े ही क्यों न हों। इस भोजन करने के नित्यकर्म में जीव जन्तुओं को गोबर/लीद/मूत्र, आदि, मानव को मल/मूत्र और वनस्पतियों को सूखे पत्ते/फल फूल/टहनी/डाल का निष्कासन समय समय पर करना होता है। इस प्रकार विकास करते हुए सभी जीवन स्वरूपों को प्रकृति का नियमों का पालन करते हुए अंत में मृत्यु का आलिंगन कर इस संसार से विदा लेनी पड़ती है।

लेकिन पृथ्वी में विद्यमान इन सभी जीवनस्वरूपों द्वारा त्यागे हुए इन पदार्थों में भी करोड़ों की संख्या में ऐसे सूक्ष्मजीवाणु होते हैं, जिन्हें हम आँख से नहीं देख सकते। ये सूक्ष्मजीवाणु, भूमि में विद्यमान कीड़े मकोड़ों के साथ मिलकर एक ओर तो उस स्थान से अनावश्यक पदार्थों की सफाई, तो दूसरी ओर इन त्यागे गए पदार्थों में समाए पौष्टिक पदार्थों को अलग कर वहाँ की मिट्टी में मिलाते हुए उसे उपजाऊ बनाते रहते हैं ताकि ऐसे स्थानों पर वनस्पतियों के फलते फूलते रहने का क्रम बना रहे व सभी जीवों को विकास के लिए भोजन मिलता रहे।
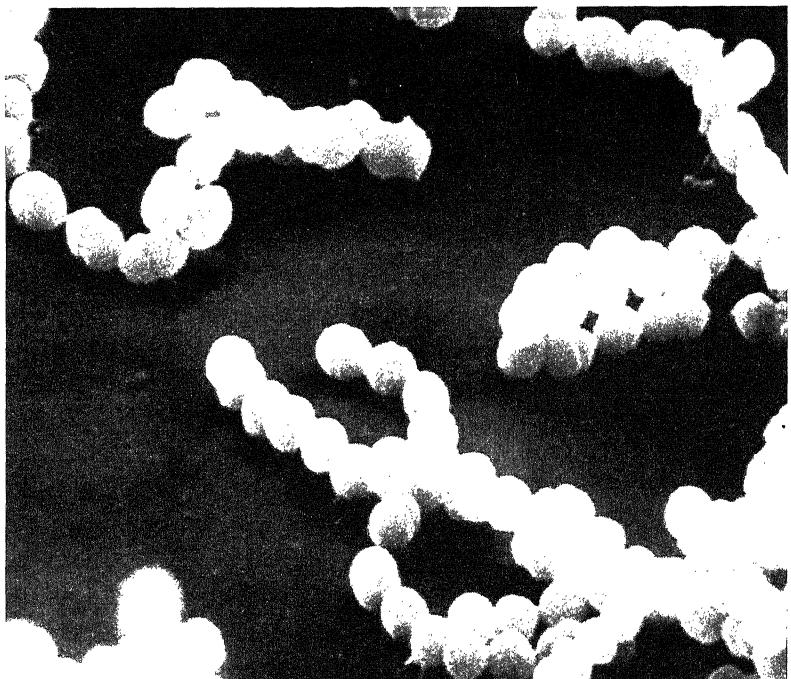
यद्यपि पृथ्वी में पाए जाने वाले सभी जीवन स्वरूप अपने आप में अनोखे व अलग स्वरूप लिए होते हैं लेकिन प्रकृति ने वनस्पतियों व इन सूक्ष्मजीवाणुओं के सहयोग से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खाद्य–श्रृंखला स्थापित की है जिसके अंतर्गत सभी जीवनस्वरूप एक अभिकाय यांत्रिक मशीन के अलग अलग पुर्जों के समान लय में

अपनी अपनी भूमिका अदा करते हुए, एक दूसरे से इस प्रकार बंधे होते हैं कि मानो एक ही परिवार के सदस्य हों, जो खून के रिश्ते से आपस में जुड़े होते हैं।

फिर वनस्पतियाँ तो सबकी पालनहार हैं, जो अपनी अदभुत प्राकृतिक क्षमता के अंतर्गत सूर्य प्रकाश से स्वयं में रासायनिक ऊर्जा ग्रहण करते हुए फलती फूलती रहती हैं। इनके माध्यम से शाकाहारी जीवों (मानव भी) को भोजन प्राप्त होता रहता है और मांसाहारी जीवों के लिए उनकी रुचि वाले शिकारों का भी विकास होता रहता है। इसके अलावा वनस्पतियाँ वायुमण्डल से हानिकारक कार्बन डाइआक्साइड व अन्य विषैली गैसों को ग्रहण कर, आक्सीजन गैस का प्रसार बढ़ाती हैं जिसे हम सभी हवा के नाम से ग्रहण कर जीवित रहते हैं। अर्थात् पर्यावरण को स्वच्छ बनाए रखने व प्रदूषण नियंत्रण में वनस्पतियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इतना ही नहीं, वनस्पतियाँ कई जीव जन्तुओं को रहने के लिए आवास, मानव को जलावन लकड़ी व मकान निर्माण सामग्री और कई प्रकार की बीमारियों का इलाज करने के लिए प्राकृतिक औषध उपलब्ध कराती हैं जिनका उपयोग मानव समेत अन्य सभी जीव करते हैं। फिर इस संसार में जीवित रहने के लिए सभी प्राणियों को श्रम अवश्य करना पड़ता है, जिससे सभी को थकान लगती है और इस थकान को मिटाने के लिए विश्राम करना आवश्यक होता है, जिसके लिए और छोटे–बड़े पेड़ों की छाँव एक बिना खर्च वाला साधन है, जिसके तले बैठने पर पशु पक्षियों समेत हम सभी को आनन्द प्राप्त होता है, उसके मूल्य का अंदाज लगाना असंभव है।

इस खाद्य शृंखला को गतिमान रखने के लिए प्रकृति ने जीवनस्वरूपों की रचना भी भूक्षेत्र की जलवायु के अनुरूप अलग अलग आकार, क्रियाकलाप व खानपान को ध्यान में रख कर की है ताकि जल, थल व वनस्पति, जहाँ कहीं भी उत्पन्न हो, उसका पूरा सदुपयोग किया जा सके। इस क्रिया को गतिमान रखने के लिए प्रकृति ने सूक्ष्मजीवाणुओं की रचना की है, जो उत्पादन और उपचार गुणों में भरपूर होने के कारण, इस निरंतर निर्माण क्रिया में एक सहायक के समान अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रकृति ने इन गुणों का सही उपयोग करने के लिए अलग गुणों वाले (हजारों लाखों की संख्या में) सूक्ष्मजीवाणुओं की स्थापना की है। उदाहरण के लिए–

एक मांसाहारी भेड़िया, अपने शिकार की हड्डी सहित सब कुछ खाकर उसे पचाने की क्षमता रखता है क्योंकि उसके दाँतों की विशेष बनावट हड्डियों को तोड़ने में सहायक होती है और उसके मुख की लार में उपस्थित तीव्र अम्लीय क्षमता भरे सूक्ष्मजीवाणु हड्डियों को गला कर चूर चूर कर देते हैं। इसीलिए भेड़िए द्वारा त्यागा गया मल एक सफेद–भूरे चूर्ण के गोले समान होता है और किसी भी स्थान पर इस रूप का मल दिखाई पड़ना, भेड़िए की उपस्थिति का स्पष्ट संकेत प्रदान करता है।

इसके विपरीत, मानव दाँतों की संरचना इस प्रकार की है कि वह प्राकृतिक रूप में अनाज, व फल

फूल (शाकाहारी भोजन) खा कर अपना विकास कर सके और इनके पाचन के लिए उसके मुख की लार में क्षारीय (ऐल्कलाइन) क्षमता युक्त जीवाणुओं की अधिकता होती है। अर्थात् मानव शरीर रचना शाकाहारी भोजन के लिए उपयुक्त है और इसलिए यह देखने में भी आता है कि शाकाहारियों की अपेक्षा मांसाहारी भोजन करने वालों के दाँत कम उम्र में ही खराब होने लगते हैं।

हमारी पृथ्वी की उम्र 450 करोड़ वर्ष मानी जाती है जिसमें जीवन का उद्‌भव सूक्ष्मजीवाणुओं से हुआ था (300 करोड़ वर्ष पूर्व) और समय बीतने के साथ साथ प्रकृति में सक्रिय जल, ताप, प्रकाश व पवन ऊर्जा के प्रभाव में इनके विभाजन से एक क्रमवार रूप में नए नए जीवन स्वरूपों का जन्म व विनाश होता है जिसके अंतर्गत मानव का जन्म हाल की घटना है– लगभग 10–15 लाख वर्ष पूर्व।

संख्या और विस्तार की दृष्टि से, पृथ्वी के समस्त प्रभाव वाले क्षेत्र में ये सूक्ष्मजीवाणु सबसे अधिक संख्या में विद्यमान हैं (मानव शरीर में ही 100,000 बिलियन) और कई ऐसे भी हो सकते हैं जिनके विषय में, हमें अभी भी ज्ञान नहीं है। हाल के वर्षों में वैज्ञानिकों ने कई अनोखे पर्यावरण (अत्यंत अधिक तापमान एवं अत्यधिक ठंडे परिवेश) में नए सूक्ष्मजीवाणुओं का पता लगाया है, जहाँ जीवन होने की कोई संभावना ही नहीं समझी जाती थी। इसलिए भविष्य में भी अन्य प्रकार के नए सूक्ष्मजीवाणुओं का ज्ञान होने पर, कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी, क्योंकि प्रकृति की माया अनन्त है।

लेकिन एक बात निश्चित है कि पृथ्वी में विकास क्रिया को गतिमान रखने में इन सूक्ष्मजीवाणुओं ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और भविष्य में भी निभाते रहेंगे। लेकिन यह भी निश्चित है कि इनमें से प्रत्येक अपने आप में अलग व एक विशेष परिवेश में प्रकृति द्वारा निर्धारित कार्य में लगा रहता है।

सूक्ष्मजीवाणुओं के गुणों में ज्ञान, वृद्धि का उपयोग भी मानव द्वारा बढ़ता जा रहा है। जीवनरक्षक ऐन्टिबायोटिक दवाओं का निर्माण, सूक्ष्मजीवाणुओं की देन है। इसी प्रकार कृषि उत्पादन वृद्धि के लिए रासायनिक खाद/कीटनाशक, खाद्यान्न संरक्षण, एलोपैथी दवाओं, कचरे से गैस व बिजली उत्पादन, कोयला खानों में रिसती विस्फोटक मीथेन गैस पर नियंत्रण, तेल व प्राकृतिक गैस भंडारों की खोज, आदि कई व्यावसायिक क्षेत्रों में इनके विशिष्ट गुणों का लाभ हम उठाने लगे हैं।

रासायनिक खादों/कीटनाशकों/औषधियों का निरंतर बढ़ता उपयोग, अप्राकृतिक होने के कारण पृथ्वी के सभी जीवों के विकास में नाना प्रकार के अवरोधों का निर्माण कर उन्हें हानि पहुँचा रहा है जिसका ज्ञान अब हमें होने लगा है। इन भौतिक परिवर्तनों को तो अब हम स्पष्ट देख कर अनुभव भी करने लगे हैं, लेकिन इसके अलावा भी कई ऐसे फेरबदल प्रकृति के अंदर सक्रिय हो सकते हैं जिनके विषय में अभी मनुष्य को ज्ञान नहीं है। विशेषकर अज्ञात 'जीन' (जीवन स्वरूपों के निर्माण आधार) जिन्हें हम देख नहीं सकते हैं। फिर इनकी हानि व परिवर्तित गुणों का सम्मिलित प्रभाव प्रकट होने में दशकों का समय लग जाता है और कुछ पीढ़ियों ही इस प्रकार के परिवर्तन का ज्ञान मानव को हो सकता है।

इनके विषय में इतना कुछ ज्ञान होने के बावजूद मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए नित नए प्रयोग कर इन सूक्ष्मजीवाणुओं के विभिन्न गुणों का उपयोग करने के रास्ते ढूँढ रहा है। इस प्रकार का एक ज्वलंत उदाहरण है– अमेरिकन कम्पनी द्वारा विकसित 'टर्मिनेटर बीज'।

इन बीजों के विकास के लिए एक फसल विशेष में प्राकृतिक रूप में विद्यमान सूक्ष्मजीवाणुओं के जीनों में इस प्रकार का फेरबदल वैज्ञानिकों ने स्थापित कर दिया है कि उनका उपयोग करने पर फसल उत्पादन में असाधारण वृद्धि होगी, लेकिन उस फसल के बीज बचा कर दूसरी फसल नहीं उगाई जा सकेगी क्योंकि उनमें दुबारा उत्पादन की क्षमता नहीं होगी। अर्थात् किसानों को प्रत्येक बार फसल उगाने के लिए उस कम्पनी से नया बीज खरीदते रहना पड़ेगा और वह

कम्पनी हमेशा लाभ कमाती रहेगी। फिर कई ऐसे बीजों का विकास करने में वैज्ञानिक लगे हुए हैं जिसमें केवल उन बीजों का उत्पादन करने वाली कम्पनियों द्वारा बताए गए/निर्माण किए गए रासायनिक खादों/कीटनाशकों का उपयोग करने पर ही फसल प्राप्त की जा सकेगी।

इस प्रकार के बीज, खाद, कीटाणुनाशक व शाकनाशी का उपयोग करने पर हमारे पर्यावरण को कहाँ तक प्रभावित कर कितना व किस प्रकार का नुकसान पहुँचाएगा, यह तो भविष्य ही बताएगा। लेकिन जब हम स्पष्ट रूप से देखते हुए अनुभव भी कर रहे हैं। कि वर्तमान में उपयोग किए जा रहे रासायनिक खादों/कीटनाशकों/दवाओं के कारण हमें कई रूप में हानि उठानी पड़ रही है, तो इन अधिक उत्पादन देने वाली बीजों को उपयोग करने में हमें पूरी सावधानी बरतनी होगी। वर्ष 1996 में क्लोनिंग द्वारा विकसित विश्व की प्रथम भेड़ 'डाली' में गठिया का रोग 6 वर्षों के अंतराल में ही उभरने लगा है (वर्ष 2002 आरंभ), जो इतनी कम उम्र की भेड़ों में नहीं पाया जाता है। वह भी डाली के ऐसे दो जोड़ों में उभरा है जो सामान्यतः इस रोग से प्रभावित नहीं होते हैं। इस नई जानकारी ने समस्त 'क्लोनिंग तकनीक' पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है कि क्या इस प्रयोग के दौरान कुछ आनुवांशिक अवगुण (जिनेटिक डिफेक्ट) उसमें अज्ञानतावश प्रत्यारोपित हो गए हैं या वह महज एक दुर्घटना मात्र है। इसलिए टर्मिनेटर का उपयोग, भविष्य में हानि का कारक भी बन सकता है।

भारत समेत यूरोपीय देश इन बीजों के प्रसार का भारी विरोध कर रहे हैं जो पर्यावरण को सुरक्षित रखने की दृष्टि से एक सही कदम है। यह इसलिए भी उचित कदम है, क्योंकि पिछले 40 वर्षों के वृक्षारोपण के अंतर्गत यह स्पष्ट देखने में आया है कि शीघ्रता से उगने वाली विदेशी मूल की वनस्पति को एक सर्वथा नए प्रकार की जलवायु वाले प्रदेशों में लगाने के फलस्वरूप वनस्पतियाँ नष्ट होने लगती हैं। इस अनुभव के कारण भी इस रूप में विकसित बीजों को भारतीय पर्यावरण में उपयोग का प्रयास, हमारे जैविक भंडारों (विश्व भर में बचे, कुछेक) को भारी नुकसान पहुँचा सकता है, जो विश्व में उभरते नए जैवशिल्पविज्ञानीय उत्पाद व्यापार का प्रमुख स्रोत होने के कारण भारत को एक बार फिर से 'सोने की चिड़िया' बनाने के द्वार तक पहुँचा चुका है।

इस क्षेत्र में आर्थिक सफलता हासिल करने के लिए भारत में उपलब्ध जैविक सम्पदा (वनस्पतीय, मानव संख्या व पशुधन) व आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान भंडार का प्राचीन परंपरागत गोबर–गोमूत्र आधारित कृषि व औषधीय प्रणालियाँ अपनाते हुए देश के भीतर बृहत् स्तर पर फैलाना होगा। इस प्रकार के कार्यक्रमों को अपनाने पर सफलता निश्चित है, जिसके कई उदाहरण वर्तमान में भी कुछ भारतीय स्वयंसेवी संस्थाएँ अपने सफल प्रदर्शनों द्वारा हमें अवगत करा रही हैं।

अब समय आ गया है कि भारतीय वैज्ञानिक भी इन सभी प्राचीनकालीन भारतीय पद्धतियों के वास्तविक महत्व को समझते हुए इनके विषय में ज्ञान, अनुभव प्राप्त करें व भारत में कार्यरत विशेषज्ञों के साथ मिलकर इन विधियों को आधुनिक वैज्ञानिक मापदण्डों के अनुरूप ढाल कर विश्व समुदाय के सामने एक परखी हुई विश्वस्त पद्धति के रूप में प्रस्तुत करें, अन्यथा नीम, हल्दी, बासमती, आदि के समान इनका भी पेटेन्ट विदेशी कम्पनियाँ प्राप्त कर विश्व व्यापार में इनका लाभ उठाने का प्रयास कर सकती हैं। विश्व में उभरते व्यापारिक समीकरणों के अंतर्गत भारत के बौद्धिक सम्पदा अधिकार को स्थापित करने में यह एक महत्वपूर्ण कदम साबित होगा, जिसके दूरगामी आर्थिक लाभ स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

छवि निकुंज, बांस बंगलो कम्पाउण्ड
चौथी क्रासिंग, रांची रोड
पुरुलिया (प० बंगाल)-723101

मित्र फफूँदी

डॉ0 बृजेशकान्त द्विवेदी
रुचि लोगानी

'कवक' या 'फफूँदी' के नाम से आप सभी परिचित होंगे। वनस्पति जगत के अन्तर्गत आने वाली कवक की कई प्रजातियाँ मिट्टी में पाई जाती हैं। आम धारणा है कि फफूँदी हानिकारक होती है लेकिन कवक की कुछ प्रजातियाँ ऐसी भी हैं जो कि लाभदायक हैं जिन्हें हम मित्र फफूँदी के नाम से जानते हैं।

हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों जैसे वेद तथा बाइबिल आदि में भी पादपरोगों द्वारा होने वाले फसलों के विनाश के कई वर्णन मिलते हैं। पुराने समय में लोग फसलों के नष्ट होने का कारण ईश्वर का क्रोध मानते थे। यूनानी कृषक अपनी फसलों की रक्षा के लिए सूर्यनारायण से तथा रोम निवासी फसलों को कीट रोगों से बचाने के लिए रोबिगो नामक कीट देवता से याचना करते थे। अठारहवीं शताब्दी के समय राई का अगर्ट रोग महामारी के रूप में फैला जिसके कारण हजारों लोगों की जानें गईं।
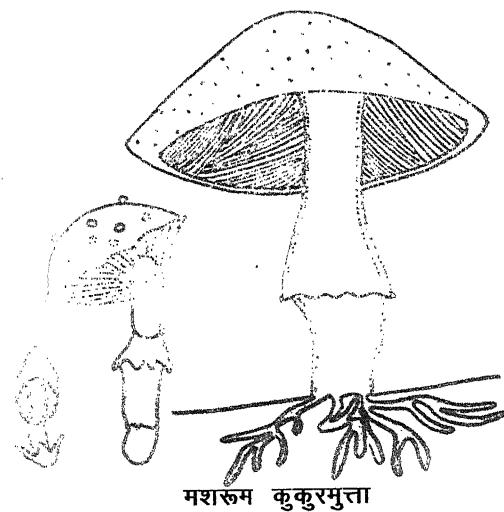
मशरूम कुकुरमुत्ता

मित्र फफूँदी ऐसे हानिकारक फफूँदियों का नाश करती है जिनसे पौधों में कई प्रकार के रोग होते हैं। मित्र फफूँदी हमारे दैनिक जीवन के साथ साथ कृषि में भी कई प्रकार से उपयोगी है जो इस प्रकार है–

पादप रोगों की रोकथाम हेतु विभिन्न कीटनाशी रसायनों का प्रयोग किया जाता है परन्तु इन कीटनाशकों का प्रभाव अल्पकालीन होने के साथ साथ अन्य जीव जन्तुओं के लिए हानिकारक है तथा पर्यावरणीय प्रदूषण की मात्रा बढ़ाता है। इसके प्रयोग से स्थायी निदान न होने के कारण यह मंहगा तथा सर्वग्राही नहीं है। इसके प्रयोग से मृदा में उपस्थित लाभकारी सूक्ष्म जीवाणुओं का नाश होता है तथा मृदा में उत्पन्न हुए अवशेष स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं अथवा वाष्पित होकर ओजोन परत का क्षय करते हैं।

ट्राइकोडरमा मित्र फफूँद का सर्वोत्तम उदाहरण है जो कि हमारी प्रकृति की देन है। स्वयं फफूँद होने के कारण भी यह एक फफूँदी नाशक है जो विभिन्न प्रकार की दालों, तिलहनों, सब्जियों आदि की फसलों में पाए जाने वाले मृदा उत्पादित रोग जैसे– उकठा, जड़गलन, कॉलर–रॉट, आर्द्रपतन को नियंत्रित करता है। ये रोग
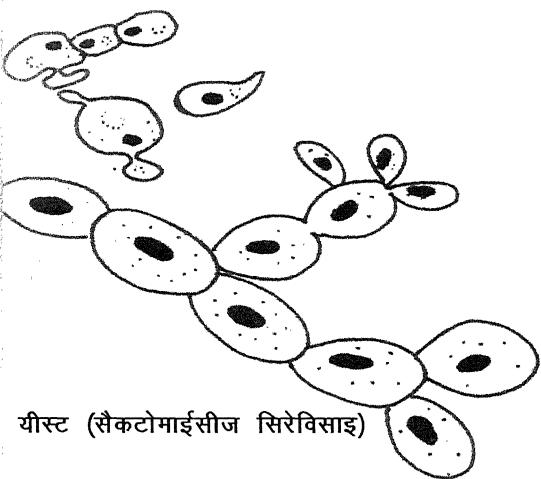
यीस्ट (सैकटोमाईसीज सिरेविसाइ)

फ्यूजोरियम, पाइथीयम, राइजोक्टोनिया, आर्मीलेरिया आदि की कुछ प्रजातियों से होते हैं।

बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र के शोध वैज्ञानिकों ने ट्राइकोडरमा की लगभग नौ प्रजातियों में से ट्राइकोडरमा विरिडी एवं ट्राइकोडरमा हारजीएनम को पादप सूत्रकृमियों एवं उकठा रोग के निदान हेतु अधिक उपयुक्त पाया है। बायोवेद शोध संस्थान ने उक्त फफूँदियों द्वारा एक जैव कीटनाशी का उत्पादन किया है और कृषकों के प्रयोग हेतु उपलब्ध कराया है। ट्राइकोडरमा नींबू के 'डेम्पिंग आफ' रोग में तथा प्रतिजैविक पदार्थों द्वारा होने वाले मुरझान को रोकता है। ट्राइकोडरमा के अतिरिक्त एस्पर्जिलस नाइजर, पेसिलोमाइसीज लिलासिनस, यीस्ट, पेनीसिलियम, ग्लोमस फैसीकुलेटम (वाम फफूँदी) आदि मित्र फफूँदी के उत्तम उदाहरण हैं तथा जैव–प्रबन्धन में सहायक हैं।

खाद्य उद्योग में भी कवकों का विशिष्ट स्थान है। दैनिक जीवन में ब्रेड का उपयोग प्रायः सभी करते हैं। ब्रेड या डबलरोटी सैकेरोमाइसीज सिरेविसाई नामक यीस्ट से तैयार की जाती है। बहुत से कवक जैसे– मशरूम (एगैरिकस), गुच्छी (मौरचेला), पफबाल्स आदि खाए जाते हैं। इनमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। इसलिए इसे सब्जी–माँस के नाम से जाना जाता है। वाइन, बीयर, एथिल एल्कोहल आदि भी शर्करा के घोल का यीस्ट द्वारा किण्वन करके बनाया जाता है।

पेनिसिलियम रोक्नोफोस्टी कुछ विशेष प्रकार के खाद्य जैसे पनीर बनाने के काम आता है।

फफूँदी या कवक प्रायः सड़े–गले पदार्थों, जैसे– मरे हुए जानवरों, टूटे हुए पौधों पर उगकर उन्हें विच्छेदित करते हैं। इस प्रकार से ये कवक व्यर्थ कार्बनिक पदार्थों को नष्ट करके प्राकृतिक सफाईकर्मी के रूप में कार्य करते हैं। विच्छेदन क्रियोपरान्त निकली कार्बन डाइ आक्साइड गैस को हरे पौधे ग्रहण करके प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करते हैं।

कवकों की बहुत सी जातियों द्वारा प्रतिजैविक औषधियाँ बनाई जाती हैं। ये औषधियाँ बहुत से सूक्ष्म जीवाणुओं का नाश करती हैं। इनमें इरगोटिन–क्लैविसेप्स परप्यूरिया द्वारा पेनीसिलीन–पेनीसिलियम नोटेटम द्वारा कीटोमिन–कीटोमियम कोकिकोडिस से, क्लोरोमाइसिटीन स्ट्रेप्टोमाइसीज वेनेजुइलु द्वारा ओरामाइसिन– स्ट्रेप्टोमाइसीज ओरियोफेशियेन्स के द्वारा तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन– स्ट्रेप्टोमाइसीज ग्राइसिस द्वारा प्राप्त की जाती है।
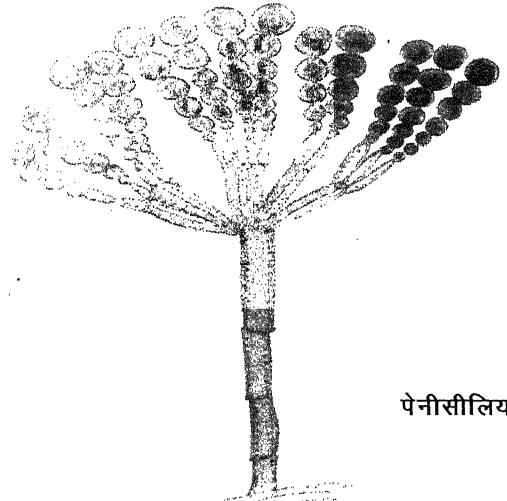
पेनीसीलियम

ऐस्करसोनिया, इम्पूसा नामक फफूँदी हमारे पौधों के लिए जैव कीटनाशक के रूप में प्रयोग की जाती है।

पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक हारमोन 'फाइटोहारमोन' कहलाते हैं। जिबरेलिन एक महत्वपूर्ण फाइटोहारमोन है जो कि फ्यूजोरियम मोनिलीफॉरमी तथा डरमोटियम आदि से तैयार किया जाता है।

कुछ फफूँद जैसे ओडियम लेक्टिस प्लास्टिक निर्माण में प्रयोग किए जाते हैं।

एस्कोमाइसिटीज, फाइकोमाइसिटीज, बेसीडियोमाइसिटीज तथा ड्यूट्रोमाइसिटीज की बहुत सी प्रजातियाँ माइकोराइजा का निर्माण करती हैं जो बहुत से पौधे जैसे साइकस, पाइनस, जैमिया आदि में पोषाहार का आधार है।

कवकों द्वारा अनेक लाइकेन भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं। फफूँदी, शैवाल की कोशाओं के साथ मिलकर 'लाइकेन' नामक संरचना का निर्माण करते हैं ये लाइकेन, लाइकेनिक अम्ल स्रावित करते है। तथा इनका आवास चट्टान होने के कारण ये स्रावित अम्ल चट्टानों का विच्छेदित कर उसे मृदा में परिवर्तित करते हैं, इसी के साथ चट्टानों में उपस्थित सूक्ष्म तत्व भी मृदा के साथ मैदानी भागों में उपजाऊ भूमि का निर्माण करते हैं जिसके कारण मृदा की जल अवशोषण क्षमता में वृद्धि होती है। कवकों द्वारा बने कुछ लाइकेन भोज्य पदार्थों के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। वायु प्रदूषित स्थानों पर लाइकेन वृद्धि नहीं करते अतः ये वायु 'प्रदूषण के सूचक' कहलाते हैं। रोचेला नामक लाइकेन से लिटमस पेपर बनाया जाता है जिसका प्रयोग प्रयोगशाला में अम्ल व क्षार की पहचान हेतु किया जाता है।

बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र ने अपने शोध परिणामों में पता लगाया है कि फसलों में सूत्रकृमियों द्वारा होने वाली क्षति लगभग 76 से 100 प्रतिशत तक है। ये पादप सूत्रकृमि पौधों की जड़ों को भेदकर पौधे तथा खनिज लवणों, जल आदि पोषक तत्वों को चूसकर इनके मध्य होने वाले आवागमन को रोक देते हैं।

मिलेडोगाइन इन्कानीटा नामक सूत्रकृमि दलहनी, तिलहनी, सब्जियों आदि फसलों की जड़ों में मूलगाँठ बनाते हैं, जिनकी रोकथाम पेसीलोमाइसीज विलासिनस, ट्राइकोडरमा तथा एस्पर्जिलस नाइजर आदि कवकों के संवर्धन से की जाती है। इन संवर्धित कवकों को मूलगाँठ रोग से ग्रसित पौधों की जड़ों में डालने से यह रोग नियंत्रित होता है और फसलों की वृद्धि एवं उत्पादन बढ़ जाता है तथा पर्यावरण को किसी भी प्रकार से प्रदूषित नहीं करता है।

उपरोक्त विवरण से हमारी प्रकृति का योगदान बिल्कुल साफ झलकता है कि प्रकृति में जैव विविधता के कारण जन्तुओं एवं वनस्पतियों के मध्य एक ऐसा सामंजस्य स्थापित है जिसके कारण ये एक दूसरे को हानि नहीं पहुँचा सकते हैं। बायोवेद शोध संस्थान में ऐसी अन्य कई फफूँदी के सन्दर्भ में शोध कार्य चल रहा है जिससे अन्य लाभकारी फफूँदियों के सन्दर्भ में पता लगाया जा सके। बायोवेद शोध संस्थान ने ट्राइकोडरमा प्रजातियों से कई दवाओं का आविष्कार किया है जिनके प्रयोग से सेब, अमरूद, संतरा एवं केला फल लगभग 20 से 25 दिनों तक सड़ता नहीं है तथा फल के गुणों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। संस्थान में सैकरोमाइसीज सिरेक्साई के घोल से तैयार दवा से भी फसलों को सड़ने से बचाया गया है। इनके प्रारम्भिक स्रोत उक्त फसल ही हैं अतः इनके द्वारा उपचारित फल किसी भी प्रकार से हानि नहीं पहुँचाते हैं और कृषकों को अधिक लाभ प्रदान करते हैं।

** निदेशक, बायोवेद शोध एवं प्रसार केंद्र*

*** शोध सहायक, बायोवेद शोध एवं प्रसार केंद्र*

103/42, मोती लाल नेहरू रोड

इलाहाबाद-211002

एवोकाडो

रामेश बेदी

यह पन्द्रह से अठारह मीटर ऊँचा वृक्ष है। पत्ते लम्बे गोल या दीर्घायत–भालाकार, चालीस सेंटीमीटर तक लम्बे, फूल छोटे, हरिताभ, घने स्नतकों में, फल बड़े, 8.3 से अठारह सेंटीमीटर लम्बे, सात से 10.5 सेंटीमीटर चौड़े, नाशपाती के आकार के, मध्य की ओर सकरे होते हुए गोल या अण्डाकार होते हैं। इनका रंग पीला हरा, गाढ़ा लाल–भूरा या जामुनी होता है। छिलका पतला या कठीला होता है। विभिन्न किस्मों के फल अप्रैल से अक्टूबर तक पकते हैं। पके फलों का गूदा जमे हुए मक्खन जैसा सख़्त या मृदु, स्वादिष्ट, मीठा–सा, क्रीम वर्ण का पीले–क्रीम रंग का, या चमकीला पीला, या हरा सा पीला होता है। बीज एकाकी, वर्तुलाकार या नोकीला, छह सेंटीमीटर व्यास का होता है।

मध्य अमेरिका का मूल निवासी है। सम्भवतः 1819 में सम्प्रविष्ट किया गया था। कुछ कृषि विशेषज्ञों के विचार में यह दक्षिण भारत में नौवीं शताब्दी में आ गया था। हैदर अली के राजकीय लाल बाग़ के पौधों की सूची में इसका पेर्सेआ ग्रातिस्सीमा गेर्तनर पुत्र (Persea gratissima Gaertner f.) नाम से उल्लेखनीय मिलता है। आधुनिक वनस्पति शास्त्र में अब इसे पेर्सेआ अमेरिकाना मिलर कहते हैं।

बागवानी

फलों के लिए यह बंगलोर, नन्दी पहाड़ियों, नागेरकोयल, शेवारौय्स, निचली पल्नी और नीलगिरि की पादगिरियों में बोया जा रहा है। पूना में भी उगाया गया है। तमिलनाडु में कल्लार तथा बुर्लिअर बगीचों में इसकी आठ किस्में उगाई जाती हैं और बंगलौर में लगभग चौदह किस्में।

कुछ मरु क्षेत्रों को छोड़कर एवोकाडो भारत के उष्णकटिबन्धी और उपोष्णकटिबन्धी भागों में, जहाँ मानसून में पहचत्तर सेंटीमीटर से 180 सेंटीमीटर के बीच वर्षा होती है, उगाया जा सकता है।

खेती

बोने के लिए बीज स्वस्थ और जोरदार पेड़ों के पूर्ण पक्व फलों से लेने चाहिए। फलों से निकालने के बाद उन्हें यथासम्भव शीघ्र बो देना चाहिए। गमलों में उगाए हुए पौधों की ऊँचाई बीस से तीस सेंटीमीटर हो जाने पर उन्हें बगीचों में स्थानान्तरित कर देना चाहिए। बीजों से उगाए पौधे यद्यपि तेजी से बढ़ते हैं और बलवान होते हैं लेकिन उनके फल अपने जनक वृक्षों के फलों जैसे बढ़िया नहीं होते और उनकी शक्ल भी वैसी नहीं होती। फलस्वरूप इन्हें वर्धी प्रजनन (vegetative propagation) से उगाना चाहिए। दाब कलमों से भी उगाया जाता है।

एवोकाडो को आमतौर पर छत्तीस सेंटीमीटर लम्बे, छत्तीस सेंटीमीटर चौड़े और छत्तीस सेंटीमीटर गहरे गड्ढे में बोया जाता है। पेड़ों के बीच का फासला आठ से दस मीटर रखा जाता है। हवाओं से होने वाली क्षति से बचाने के लिए छोटे वृक्षों के साथ डण्डे बाँध देते हैं। उगाने के सात से दस साल तक छंटाई की जरूरत नहीं होती। भूमि में विद्यमान आर्द्रता और गरमी की प्रखरता को ध्यान में रखते हुए छह से दस दिन के

अन्तर से सिंचाई करनी चाहिए। दस साल के वृक्षों में, फूल आने से पहले, पैंतालीस किलोग्राम फ़ार्मशाला का खाद, 4.5 किलोग्राम रेण्डी की खली और 0.9 किलोग्राम सुपरफास्फेट देने से अच्छा लाभ होता है।

बोने के बाद एवोकाडो में करीब पाँच साल बाद फल आने शुरू होते हैं। और लगभग पचीस साल लगते रहते हैं। कल्लार और बुर्लिअर में मार्च–अप्रैल में पेड़ फूलता है। कभी कभी नवम्बर–दिसम्बर में दुबारा फूल आ जाते हैं। इनके फल क्रमशः अगस्त–सितम्बर और मई–जून में पकते हैं। लम्बे फल वाली किस्में गोल फल वाली किस्मों से पन्द्रह दिन पहले पकती हैं। फल पचासी ग्राम से लेकर एक हजार ग्राम तक या अधिक भारी होते हैं। पेड़ों पर लगे–लगे फल नरम नहीं होते। गोल फलों के छिलके का रंग जरा सा बदलकर फीका पीला हो जाने पर और लम्बे फलों में गूढ़ा हो जाने पर फल तोड़ लिए जाते हैं।

दक्षिण भारत में प्रति वृक्ष सौ से एक सौ बीस फल लगते हैं। अमेरिका और अन्य जगहों पर औसत पेड़ एक मौसम में 45 से 67.5 किलोग्राम फल पैदा करता है, कुछ पेड़ों पर 1,200 तक फल लगते हैं।

तोड़ने के बाद अपक्व फल चार–पाँच दिन में नरम हो जाते हैं और उसके बाद ये अच्छे नहीं रहते। इसलिए ये सामान्यतया ताजे ही खाए जाते हैं। उत्तर भारत में यह फल नहीं देखा जाता।

रासायनिक संघटन

केरल के फलों में औसत 10.6 प्रतिशत छिलका, 69 प्रतिशत गूदा और 20.5 प्रतिशत बीज होता है। फल को सलाद के रूप में खाते हैं, इसमें काली मिर्च, नमक या मीठा मिला लेते हैं। इसे आइसक्रीमों में भी डालते हैं। अधिकतर फलों की तुलना में एवोकाडो फल बहुत पौष्टिक है। इसमें स्नेह की प्रचुरता होती है और प्रोटीन, खनिज तथा विटामिन पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

उच्चकोटि का तेल

गूदे में (शुष्क आधार पर) 66 से 84 प्रतिशत वसीय तेल (fatty oil) होता है। बढ़िया फलों की छंटाई के बाद बचे हुए फलों या क्षतिग्रस्त फलों से कैलीफोर्निया और मध्य अमेरिका के कुछ देशों में कुछ परिमाण में एवोकाडो तेल निकाला जाता है। यह निर्जलित गूदे को पीड़कर अथवा शुष्क गूदे को पानी के साथ पीसकर सेंट्रिफ़्यूगल मशीन द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह गाढ़ा, हल्की गन्ध वाला होता है। इसका स्वाद हिजली बादाम सरीखा होता है। इसकी कीमत ऊँची होती है। यह प्रसाधन दव्यों के निर्माण के काम आता है। सलाद के साथ खाने वाला उच्चकोटि का तेल है। बढ़िया

किस्म के साबुनों और फार्मेसी उद्योग में काम आता है।

गूदे से तेल निकालने के बाद बचा हुआ चूरा पशुओं के आहार और खाद के लिए प्रयोग किया जाता है। विलायक निस्सारण से प्राप्त गूदे का तेल हरे रंग का होता है। तेल में लेसिथिन और विटामिन ए, डी और ई होते हैं।

पत्तों में 0.5 प्रतिशत हरा सा पीला उड़नशील तेल होता है। यह गन्ध और स्वाद में खमचुम (Artemisia dracunculus Linn.) से प्राप्त तेल के सदृश होता है। तेल का मुख्य घटक मिथाइल चविकोल है। पत्तों में भेषजोपयोगी क्षाराभ पाए जाते हैं। पत्ते खाने से खरगोश मर जाते हैं।

सूखे छिलके और बीजों के निष्कर्ष जीवाणुरोधी हैं। आहारद्रव्यों के परिरक्षण के लिए जड़ों से एक जीवाणुरोधी निकालने की प्रक्रिया का पेटेण्ट कराया जात है। छाल में 3.5 प्रतिशत उड़नशील तेल निकलता है जिसमें सौंफ जैसी गंध आती है। इसका मुख्य घटक मिथाइल चविकोल है और इसमें थोड़ी मात्रा में एनिथोल भी होता है।

लकड़ी के उपयोग

अन्तःकाष्ठ गुलाबी सी या हलकी लाल सी भूरी होती है। रसकाष्ठ मोटी, क्रीम रंग की यह फीकी भूरी सी होती है। प्रति घन मीटर लकड़ी का भार 560 से 640 किलोग्राम होता है। यह बहुत टिकाऊ नहीं होती। इस पर काम करना बहुत आसान होता है। यह व्यावसायिक महत्व की नहीं है।

बेदी शोध संस्थान
डी-28, राजौरी गार्डन
नई दिल्ली-110027

पृथ्वी का एक और चंद्रमा

नेचर और जर्नल न्यूसाइंटिस्ट के ताजा अंक में प्रकाशित रिपोर्टों के अनुसार, एरिजोना वासी बिल यंग ने गत 3 सितंबर की रात को अपने घर के पिछवाड़े बनी शौकिया आब्जरवेटरी से चंद्रमा के पार छोटा और चमकीला एक अनोखा ऑब्जेक्ट ढूंढ निकाला। बिल को लगा कि उन्होंने पृथ्वी की ओर आते किसी एस्ट्राएड को ढूंढ निकाला है। उन्होंने इसकी सूचना तुरंत एस्ट्राएड और कॉमेट के सूचना बैंक माइनर प्लेनेट सेंटर को दी। माइनर प्लेनेट सेंटर ने इसकी पुष्टि की और इसे जे 002 ई 3 का नाम दिया। सेंटर ने तुरंत नासा को खबर दी। नासा के खगोलवैज्ञानिकों ने बताया कि यह ऑब्जेक्ट सात लाख किलोमीटर दूर है तथा करीब 59 फिट लंबा है और प्रत्येक 48 दिन में एक बार पृथ्वी की परिक्रमा करता है। साइंटिस्ट हैरत में थे कि आटोमैटिक स्कैनरों द्वारा दिन रात आकाश खंगाले जाने के बावजूद धरती के इतना नजदीक आ जाने के बाद यह एकदम से कैसे दिखाई दिया। नासा की जेट प्रोपल्शन लैबोरेटरी (जेपीएल) के वैज्ञानिकों ने बताया कि यह आब्जेक्ट शक्तिशाली सैटर्न फाइव राकेट के तीसरे चरण का बूस्टर हो सकता है जो नवंबर 1969 में 12 अंतरिक्षयात्रियों के साथ स्पेसक्राफ्ट अपोलो को चंद्रमा पर ले गया था। आखिर यह अब तक दिखाई क्यों नहीं दिया ? नासा की जेट प्रोपल्शन लैब के एस्ट्रोनामर पॉल चोडास का कहना है कि अपोलो को चंद्रमा की कक्षा में प्रवेश कराने के दौरान जब तीसरा बूस्टर अलग हुआ तो यह किसी तरह हीलियोसेंट्रिक कक्षा में पहुंच गया और सूर्य की परिक्रमा करने लगा। इस पथ पर सूर्य को एक परिक्रमा करने में जे 002 ई 3 को करीब 30 वर्ष लग गए और अप्रैल में यह अपने पथ के 'लैगरेंज प्वाइंट' पर आ गया। 'लैगरेंज प्वाइंट' वह बिंदु हैं जहां सूर्य और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण एक दूसरे को कैंसिल करते हैं। बस इस बिंदु से जे 002 ई 3 पृथ्वी के गुरुत्व प्रभाव में खिंच आया। पॉल बताते हैं कि अभी सही–सही यह नहीं बताया जा सकता कि जे 002 ई 3 तीसरे चरण का बूस्टर ही है। इसकी पहचान का काम जारी है और यदि यह एस्ट्राएड हुआ तो चंद्रमा के बाद पृथ्वी को एक नया और तीसरा साथी मिल जाएगा।

गाँधी जयन्ती पर विशेष

पर्यावरणविद् गाँधी

रामचन्द्र मिश्र

सत्य, अहिंसा और नैतिक आचारण के प्रयोग–सिद्ध अमर सिद्धांत जो हमें अमूल्य धरोहर के रूप में मिले हैं उन्हें कृतज्ञता के साथ स्मरण कर इसके प्रणेता राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को हम विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

गांधी जी के सिद्धांत सुसंगत रूप से जुड़े हुए हैं जिनके पुष्प हैं– जन आधारित सामाजिक, आर्थिक स्वतंत्रता, स्वदेशी, स्वावलम्बन, सर्वोदय, ग्राम्योदय, विकेंद्रीकरण, श्रम प्रधान माध्यमिक प्रौद्योगिकी साध्य उद्यम, क्षेत्रीय संसाधनन, पर्यावरण अनुकूलता और सतत् विकास से जुड़े सिद्धांत। गांधी दर्शन को इनके मूल्यों की संपूर्णता में ही सत्यतः ग्रहण करना संभव है। सत्य, अहिंसा और नैतिक आचरण उपरोक्त सभी कारकों के मूल में अनिवार्यतः उपस्थित हैं। यही कारण है कि समाज के सभी वर्ग, समुदाय और क्षेत्र से जुड़े हुए लोग गांधी दर्शन से निरंतर आकर्षित होते रहे हैं। सत्य के संधान में सन्नद्ध वैज्ञानिकों के लिए गांधी दर्शन स्वाभाविक रूप से आकर्षण का केंद्र है। यही कारण है कि गांधी जी को पर्यावरणविद् के रूप में पहचाना गया है और पर्यावरण प्रदूषण रूपी दानव पर विजय प्राप्त करन के लिए गांधी जी के उपाय ब्रह्मास्त्र के रूप में प्रयोग में लाए जा सकते हैं।

वस्तुतः गांधी जी एक 'पर्यावरण योगी' के रूप में हमें दिखाई देते हैं, यद्यपि स्वयं उनके समय में यह विषय चर्चित नहीं था। योग के तत्व यम तथा नियम आधारभूत रूप से पर्यावरण की रक्षा और संसाधनों के नैतिक दोहन को सुनिश्चित करते हैं जिन्हें गांधी जी ने समझा, अपने स्वयं के आचरण में ढाला और पारिस्थितिकी संतुलन का संदेश दिया। औद्योगिक, आर्थिक और सामाजिक उत्थान के सतत् उपाय के रूप में गांधी जी की परिकल्पना के खादी ग्रामोद्योग में पर्यावरण संरक्षण की आधारभूत जुगत अंतर्निहित है।

ज्ञातव्य है कि योग क्रियाओं, योगासन आदि द्वारा स्वस्थ शरीर सुनिश्चित होता है जो एक अक्षुण्ण प्रभाव है। इसी प्रकार यम एवं नियम द्वारा दैनिक आचार संहिता और उसके द्वारा औद्योगिक, आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान का सतत् नियमन हो सकता है। पाँच यम वस्तुतः सतत् जीवन के नैतिक सिद्धांत या निर्देश हैं जो एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य, अन्य सभी जीवों तथा जैव मंडल के निर्जीव घटकों के साथ हानिरहित या पर्यावरण–अनुकूल व्यवहार को निर्दिष्ट करते हैं। यम में प्रथम अहिंसा का स्थान है जो सृष्टि के सभी सजीव एवं निर्जीव अथवा जड़–चेतन के प्रति अहिंसक प्रयोग का आदेश देता है। सत्य दूसरा यम है, यद्यपि सत्य एवं अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह महत्वपूर्ण हैं। सत्य का संधान और सत्य को

प्रत्येक क्रिया में सन्नद्ध करना पर्यावरण की रक्षा हेतु उतना ही आवश्यक है जितना अन्य किसी भी क्षेत्र के लिए। तीसरे यम अस्तेय के अनुपालन द्वारा गलत या हानिकारक तरीकों से प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं का बहिष्कार करने तथा विध्वंस व बर्बरता के त्याग करने का आदेश प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य भी एक यम है जिसका उद्देश्य रति क्रिया को त्यागना नहीं बल्कि यों नियंत्रित करना है ताकि मानव और पशुओं के जनन में प्राकृतिक संतुलन कायम रहे और संसाधनों के साथ अनुपात न बिगड़े। पाँचवाँ यम है अपरिग्रह यानी उपभोक्ता वस्तुओं एवं सेवाओं का परिमाण लालच के अनुसार नहीं, बल्कि सामान्य (न्यूनतम) आवश्यकता की सीमा तक ही स्वीकारा जाए।

यम की तरह ही नियम भी पाँच हैं जो वस्तुतः व्यक्तिगत आचार–विचार की नियमावली है और निर्धारित करता है कि प्रथमतः शौच की उपयुक्त प्रणाली अपना कर तन–मन और पर्यावरण को स्वच्छ रखें। इसमें अपशिष्ट निपटान और जैव अवक्रमण का नियमन भी सन्निहित है। महत्वपूर्ण बात यह भी है कि काम, क्रोध, मद और लोभ पर विजय पाना शौच नियम का ही अंग–प्रत्यंग है। कामुकता या अनावश्यक रति क्रिया पर रोक तथा क्रोध और लोभ पर अंकुश का अपरोक्ष संबंध पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने से है। संतोष, तपस, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान चार अन्य नियम हैं जिनका उद्देश्य उपभोग के प्रति तुष्टि की भावना को नियंत्रित करना और अन्य लोगों की आवश्यकताओं के सापेक्ष रखना, मितव्ययी होना, आत्मनिरीक्षण करना एवं प्रार्थना या मनन चिंतन द्वारा मानसिक प्रदूषण का निवारण करना है।

यम तथा नियमों का परित्याग या इनकी अवहेलना करने का परोक्ष एवं अपरोक्ष प्रतिफल प्रकृति या जैव मंडल के घटकों के क्षय या गंभीर असंतुलन के रूप में भुगतना पड़ सकता है और जीवन की मधुरता में खलन इस प्रकार अवश्यंभावी है। वस्तुतः इस चिंताजनक स्थिति में मनुष्य गिरफ्तार हो चुका है जिससे मुक्ति पाने के लिए मात्र विज्ञान के प्रौद्योगिकी को सन्नद्ध करना अपर्याप्त साबित हो चुका है। विनाश के कगार से पीछे हटने के लिए अब तकनीकी उपायों के साथ यम और नियमों का कड़ाई से अनुपालन ही सक्षम होगा। अनावश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं तथा आवश्यक चीजों का अत्यधिक उपभोग, संसाधनों का अतिशय दोहन, बर्बरता व विध्वंस आदि सृष्टि के विनाश की ओर ढकेलते रहेंगे।

गांधी जी ने सभी जीवों के प्रति अहिंसक बर्ताव तथा निर्जीव संसाधनों के प्रति विध्वंसक या बर्बर रुख को त्यागने का संदेश दिया है जो इस तथ्य के संबंध में विशिष्ट महत्व अख्तियार करता है कि मनुष्य भले ही सृष्टि की सर्वोत्तम कृति है किंतु जीवों या सूक्ष्म जीवों की 1604000 किस्में जो पर्यावरण में व्याप्त हैं, मानव जीवन के सामंजस्य में हैं। ऐसे समय जब आधुनिक विज्ञान के तथ्य से लोग अनभिज्ञ थे और आनुवांशिकी के प्रयोग के दिन बहुत दूर थे, सत्य, अहिंसा एवं नैतिक आचरण के माध्यम से जो दूरदृष्टि गांधी जी को प्राप्त हुई थी उसके आधार पर उन्होंने कहा था कि 'प्रकृति में आधारभूत एकता है जो महाकाय विविधता के बावजूद कायम है, प्रकृति में एक क्रमबद्धता या अनुशासन है जो सभी जीवों या वस्तुओं को संचालित करता है।' वर्ष 1924 के इस कथन के 30 वर्ष बाद आनुवांशिकी के ज्ञानोपरांत यह साबित हो सका कि पर्यावरण में उपस्थित सभी जीवों में डीएनए रसायन सर्वनिष्ठ है जिससे तय है कि अनेकता में एकता है और जीवों का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर है। यह तथ्य धार्मिक विश्वास और आचरण में तब्दील होकर पर्यावरण संरक्षण का सशक्त आधार बन सकता है। वस्तुतः यह ज्ञान ईशोनिषद् में उपलब्ध है।

पर्यावरणमित्र गांधी जी ने अपने आचरण और अनुभव के आधार पर पर्यावरण संबंधी जो विचार दिए थे आज कहीं ज्यादा सार्थक हैं। उन्होंने कहा था कि, 'प्रकृति पर अनाचार रोकने के लिए पारिस्थितिकी अभियान तब तक प्रभावी नहीं हो सकता तब तक अहिंसा मानव संस्कृति में अनिवार्य व्यवहार नहीं बन

शेष पृष्ठ 46 पर ..

स्वास्थ्यवर्धक चना

डॉ0 गोपाल पाण्डेय, राजेश कुमार पाण्डेय एवं हेंमलता पन्त

रहीमदास ने लिखा है–

रहिमन रहिला की भली जो परसै चितलाय
परसत मन मैला करै वा मैदा जल जाय

यह रहिला अवध तथा बुन्देलखंड की बोली का शब्द है जो चने के लिए प्रयुक्त होता है। कहावत है "अकेला चना कहीं भाड़ फोड़ सकता है ?" किन्तु गरीबों का या रूखा सूखा भोज्य पदार्थ आज बाजार में दालों में सबसे मँहगा बिकता है। क्यों ? पढ़िए इस लेख में।

– **सम्पादक**

चना देश की मुख्य दलहनी फसल है, इसकी खेती लगभग 72 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है तथा इसका वार्षिक उत्पादन 50 लाख टन है जो सम्पूर्ण दलहनी फसल का 30 से 50 प्रतिशत हिस्सा है। इसकी उत्पत्ति दक्षिणी यूरोप में मानी जाती है। अफगानिस्तान इसका मुख्य क्षेत्र है इसके अतिरिक्त भारत, सूडान, अफ्रीका, लगभग सम्पूर्ण एशिया तथा भारत में पहाड़ी तथा तटीय क्षेत्र को छोड़कर चने की खेती सम्पूर्ण क्षेत्र में की जाती है। परन्तु, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, हरियाणा, गुजरात एवं बिहार राज्य क्षेत्रफल तथा उत्पादन दोनों दृष्टि से अतिमहत्वपूर्ण है। इन राज्यों का चने के उत्पादन एवं क्षेत्रफल में लगभग 90 प्रतिशत का योगदान है।

चने में 17 से 25 प्रतिशत तक प्रोटीन होता है, जो अन्य अनाजों में पाई जाने वाली प्रोटीनों से दो तीन गुना अधिक होती है। मनुष्यों में कार्बोहाइड्रेट तथा जल के बाद प्रोटीन ही अत्यन्त आवश्यक तत्व है। माँसपेशियाँ, रक्त, हड्डियाँ, बाल तथा त्वचा प्रोटीन से ही निर्मित होती हैं। मनुष्य के शरीर के शुष्क भाग का 45 प्रतिशत प्रोटीन ही होता है। नवजात शिशुओं, बच्चों, गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली स्त्रियों के लिए प्रोटीन अत्यन्त आवश्यक है। शरीर में विभिन्न एंजाइमों, हार्मोनों तथा एन्टीबॉडीज के निर्माण तथा विभिन्न उपापचयी क्रिया हेतु प्रोटीन अत्यन्त आवश्यक है। प्रोटीन की कमी से बच्चों में क्वाशिओरकोर नामक रोग हो जाता है। इस रोग में एक से तीन वर्ष के बच्चों की शारीरिक तथा
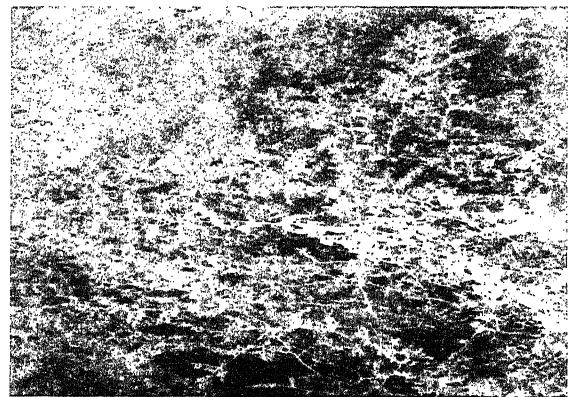
मानसिक वृद्धि रुक जाती है। प्रोटीन की कमी से शरीर फूल जाता है। त्वचा तथा बाल शुष्क हो जाते हैं। खून तथा भूख की कमी हो जाती है तथा रोगरोधक क्षमता भी कम हो जाती है। यद्यपि दालों में गंधकयुक्त अमीनो अम्ल– जैसे मिथियोनिन तथा सिस्टीन का अभाव होता है, परन्तु उनमें लाइसिन प्रचुर मात्रा में रहता है। इसी कारण भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् द्वारा अनुमोदित सभी संतुलित भोजनों में दालों तथा अन्य धान्यों के संतुलित संयोग की वकालत की गई है। दालों में विटामिन–बी अच्छी मात्रा में पाया जाता है। चना के प्रयोग से हमें सीधा कैरोटीन नामक पदार्थ प्राप्त होता है, जो शरीर के अन्दर विटामिन–ए में परिवर्तित हो जाता है। इससे आँख की रतौंधी, त्वचा का सूखापन, मुहाँसे, बच्चों का मन्द बुद्धि होना जैसे विकार दूर हो जाते हैं। विटामिन–बी समूह में थाइमिन शारीरिक वृद्धि तथा प्रजनन के लिए आवश्यक है। इसकी कमी से बेरी–बेरी रोग हो जाता है। भूख कम लगती है तथा वजन घट जाता है। इसी प्रकार राइबोफ्लेविन की कमी होने पर होठ सूख कर फटने लगते हैं, आँखें लाल हो जाती हैं तथा जीभ पर छाले पड़ जाते हैं। इन रोगों से बचने के लिए दालों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

चना में नियासिन भी अच्छी मात्रा में पायी जाती है, जो डर्मेटाइटिस डायरिया तथा डीमैन्टिया नामक रोग से बचाता है। दालों में लोहा भी प्रचुर मात्रा में रक्त की कमी को दूर करती है तथा शरीर में आक्सीजन संवाहक में सहायक होती है। शारीरिक क्रियाओं के क्रियान्तरण हेतु फास्फोरस भी दालों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके अलावा ताँबा तथा मालीब्डिनम भी पाया जाता है। टैनिनों की पूरी मात्रा चने के छिलके में होती है। भारत में 75 प्रतिशत से अधिक दलहनों की पोषकता द्वारा छिलकाविहीन करके दालों के रूप में ही प्रयोग किया जाता है। दलाई से दलहनों की पोषकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता पर इसकी पाचकता बढ़ जाती है क्योंकि दलहनों के छिलके में ही अपाचक पालीसैकराइड तथा टैनिन होते हैं। चने को अंकुरित करके प्रयोग करने से एस्कार्बिक एसिड (जिसे विटामिन–सी के नाम से जाना जाता है) की मात्रा जो चने में नगण्य होती है बढ़ जाती है। इसी प्रकार अंकुरित बीजों में बिना अंकुरित बीजों की अपेक्षा फोलिक एसिड तथा विटामिन–बी समूह के कई विटामिनों की मात्रा भी बढ़ जाती है। चने के उपयोग से पाचन तंत्र, रक्त परिसंचरण आदि सभी महत्वपूर्ण अंग ठीक तरह से कार्य करते हैं।

महत्वपूर्ण उपयोगी भाग

चने की पत्तियों में मैलिक तथा आक्सैलिक अम्ल पाए जाते हैं जो उदर विकार के निदान में प्रयोग होते हैं। अम्ल की उपस्थिति के कारण चने की पत्तियाँ खाने में खट्टी लगती हैं। इसके बीज का उपयोग बहुआयामी है। कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन्स तथा कुछ उपयोगी सूक्ष्म तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इससे कई रोगों का निदान होता है। इसके छिलके का उपयोग चारे के रूप में किया जाता है जो पशुओं के लिए एक स्वादिष्ट खाद्य होता है। इसकी जड़ में नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु (राइजोबियम) पाए जाते हैं, जो वायुमण्डल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके दलहनी फसलों को नाइट्रोजन प्रदान करते हैं जिससे चने के पैदावार अच्छी होती है।

सामाजिक दृष्टिकोण

सारी दुनिया में काबुली चना तथा काबुल के घोड़े दोनों अपनी शक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं जिसका उपयोग सभी देशों में किया जाता है। सभी आधुनिक मशीनों की शक्ति का मापन 'अश्व शक्ति' नामक इकाई से किया जाता है। एक अश्व शक्ति एक घोड़े की शक्ति के बराबर होती है जबकि घोड़े का मुंख्य भोजन चना होता है। चने का अधिकतर उपयोग घोड़ों के लिए किया जाता है जिससे उसकी शक्ति का विकास होता है।

चने का उपयोग दुधारू पशुओं के लिए भी अति लाभदायक होता है जिससे चना दुग्ध उत्पादन

तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होता है।

सुबह के नाश्ते में मक्खन, ब्रेड, तैलीय पदार्थों के स्थान पर अंकुरित चने के उपयोग से मधुमेह तथा रक्तचाप आदि बीमारियों से बचा जा सकता है। प्राचीन काल से ही लोग चने तथा मक्के के रोटियों का उपयोग भोजन के रूप में करते आ रहे हैं।

द्वापर युग में छप्पन भोग की प्रथा की शुरुआत हुई जिसमें चना सबसे मुख्य पदार्थ था। चने का आटा जिसे हम बेसन कहते हैं उससे अनेक प्रकार के व्यंजन बनते हैं। सूरदास ने अपने एक पद में छप्पन भोग के अन्तर्गत बेसन की कढ़ी का वर्णन किया है।

मुगल बादशाह औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को जब ग्वालियर के किले में कैद किया तो बादशाह से पूछा गया कि आप क्या खाओगे ? तो बादशाह ने चने की रोटी खाने की इच्छा व्यक्त की थी। इस प्रकार चने की उपयोगिता अनादि काल से है।

काशी के प्रसिद्ध साहित्यकार बाबू जयशंकर प्रसाद जी ने चने से प्रभावित होकर एक मिठाई की दुकान खोली थी जिसका नाम 'मधुर जलपान गृह' है और एक साहित्यकार होने के नाते भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने इसका उद्घाटन किया था। इस दुकान की निर्मित हरे चने की बर्फी अत्यन्त लोकप्रिय है जिसकी आपूर्ति सुदूर के बड़े बड़े नगरों में यहीं से की जाती है।

इतना ही नहीं, हजारों की संख्या में बेरोजगार युवक थोड़ी सी पूँजी लगाकर कोर्ट कचहरी, चौराहों, बस अड्डों, चलती रेलगाड़ियों में अंकुरित चने बेचते हुए मिलते हैं और इससे हुई आमदनी से अपने परिवार की जीविका चलाते हैं। उच्चवर्गीय घरों की रसोइयों में चने का उपयोग कई रूपों में खाने के लिए अथवा त्वचा की बीमारियों से बचने के लिए हल्दी तथा बेसन के उपटन के रूप में किया जाता है। भुने चने को पीसकर सत्तू बनाया जाता है जो पौष्टिक भोज्य है।

बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र
103/42 मोती लाल नेहरू मार्ग
इलाहाबाद-211002

पृथ्वी की चिंता करता एक और पृथ्वी शिखर सम्मेलन

दक्षिण अफ्रीका के जोहानसबर्ग नगर में संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में सितंबर के प्रथम सप्ताह में आयोजित पृथ्वी शिखर सम्मेलन इस कड़ी में हुए पिछले सम्मेलनों जैसा ही रहा। विकसित देशों और विकासशील तथा गरीब देशों के बीच प्रदूषण रोकने के उपायों तथा इनके लिए आवश्यक आर्थिक संसाधन जुटाने जैसे मुद्दों पर मतभेद खुलकर सामने आए। गरीबों की समस्याओं पर पाँच सितारा होटलों में लम्बी चर्चाएँ हुईं तथा आयोजन तथा सुरक्षा व्यवस्था में अपार धन का अपव्यय हुआ। सम्मेलन में सौ से अधिक देशों के शासनाध्यक्षों ने भी भाग लिया।

यद्यपि इस सम्मेलन में सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों ने बड़ी संख्या में भाग लिया और अनेक संकल्प पारित किए जो धरती के पर्यावरण को बचाने में साहयक सिद्ध होंगे, किंतु इन संकल्पों के क्रियान्वयन की कोई स्पष्ट परिपाटी अभी आरंभ नहीं हो सकी है जिसका पालन सभी के लिए अनिवार्य हो।

धरती को महाविनाश से बचाने के लिए ऐसा करना अत्यंत आवश्यक है।

- देवव्रत द्विवेदी

काल की अवधारणा

✍ डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र

भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण का कथन है– कालः कलयतामहम्। भावार्थ है कि गणना करने वालों के लिए मैं काल यानी समय हूँ। कहने का आशय है कि काल या समय गणना का विषय है। समय की इतनी सुंदर व्याख्या अन्यत्र अप्राप्य है। समय क्या है ? वास्तव में समय एक पहेली है। समय का आशय अलग–अलग तरह के व्यक्तियों के लिए अलग–अलग होता है। वैज्ञानिकों के लिए यह एक भौतिक राशि है जिसके सापेक्ष वे किसी घटना या प्रक्रिया को घटते देखते हैं। वहीं दार्शनिकों के लिए समय एक गहन चिंतन–मनन का विषय है। अर्थ वित्त जगत के लिए समय का मतलब होता है पैसा। वहीं आम जन के लिए समय का मतलब घंटा, मिनट और सेकेंड होता है।

समय के साथ समय की परिभाषा और संकल्पना बदलती रही है। चूँकि समय का संबंध गणना से है अतः समय का अर्थ परिवर्तन से हुआ। आदिमानव जब सभ्यता और संस्कृति के सरोकारों से दूर कंदराओं में वास करता था तब भी दिन रात होते थे। सूरज तब भी उगता और अस्त होता था। चाँद–सितारे तब भी आकाश में मौजूद थे और यथावत् गतिमान थे। लेकिन तब इंसान संभवतः काल की वर्तमान अवधारणा से दूर था। यद्यपि तब समय की कोई संकल्पना रही हो या न रही हो लेकिन समय के साथ समय ने अपने पदचिन्ह छोड़ दिए हैं।

पुरातात्विक महत्व की वस्तुओं तथा जीवाश्मों की उम्र का हिसाब समय के साथ विघटन/परिवर्तन की अवधारणा पर आधारित है। वृक्षों के तनों में बनने वाले वार्षिक वलय समय के ही निशान हैं। (वलयों की
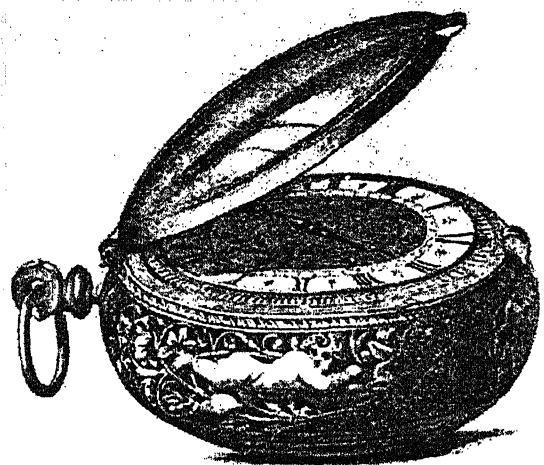
संख्या किसी वृक्ष की उम्र की सूचक है)

अब तक के अध्ययनों का निष्कर्ष है कि काल परिभाषातीत है, हाँ इसे नापा जरूर जा सकता है। हम अपने दैनिक जीवन में जिस समय की बात करते हैं वह समय की नाप ही है। यह नाप बदलाव से जुड़ी है। बिना परिवर्तन के समय का मापन व्यर्थ है। किन्हीं दो घटनाओं के बीच अंतराल को उसी तरह के आवर्ती/चक्रीय बदलावों के संदर्भ में ही मापा जाता है। यानी समय के मापन में हम प्रक्रिया को एक तरह से छोटे छोटे अंतरालों में विभक्त करते हैं।

समय की इकाई सेकेंड है। जब हम एक घंटे की बात करते हैं तो उसका मतलब है कि उसमें साठ मिनट हैं, और हर मिनट में साठ सेकेंड हैं। यानी कि घड़ी में सेकेंड की सुई ने उस दौरान साठ चक्कर लगाए

तथा मिनट की सुई ने पूरी एक परिक्रमा पूर्ण की। इन सुइयों की गतियाँ परिवर्तन ही तो हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि काल प्रवाह एकल दिशात्मक है। समय का प्रवाह अनंत भूत से अनंत भविष्य की ओर निरंतर जारी है। हमारे समस्त अनुभव भी ऐसा बताते हैं। इंसान की यात्रा शिशु से बालक, फिर किशोर, और युवा होते हुए वृद्धावस्था की ओर होती है। इसका विलोम संभव नहीं है। जीव जगत की सभी प्रजातियों में इसी प्रक्रिया के दर्शन होते हैं।

ब्रह्माण्ड में अतिसूक्ष्म से लेकर महाविराट तक हर चीज गतिशील और परिवर्तनशील है। परिवर्तन और समय का अन्योन्याश्रित संबंध है। गतिहीनता एक तरह से समय के ठहराव की सूचक है। इसे समझने के लिए एक दृष्टांत काफी होगा। मान लीजिए हम महासागर मे खड़े किसी जहाज की डेक पर बैठे हैं। तट कहीं दूर छूट गया है। आसमान बिल्कुल निरभ्र है। मौसम शान्त है और चारों ओर नीरवता व्याप्त है। जहाज का इंजन भी बंद है। सागर की लहरें भी शान्त हैं। हम अपना ध्यान अंतरिक्ष की ओर लगा कर सोचें कि क्या कहीं कोई चीज है जो गति में हो। यदि हाँ तो क्या समय ठहर गया है ? ऐसा नहीं होगा क्योंकि हमारी सांसें निरंतर चल रही होंगी। फेफड़े फूल और सिकुड़ रहे होंगे। वे खुद समय बीतने के परिचायक होंगे। यदि हम कुछ क्षण के लिए सांस रोक दें तो ? जाहिर है हमारी नब्ज़ चल रही होगी, हमारा ह्रदय धड़क रहा होगा। उसे हम नहीं रोक सकते। उसके स्पंदन का आभास हमें सहज ही होगा। यानी तमाम विरामों के बावजूद कुछ जरूर बच रहता है जो परिवर्तनशील है और वह हमें समय बीतने का आभास देता है।

नवीनतम शोधों से ज्ञात हुआ है कि समय की कुंजी हमारे मस्तिष्क में निहित है। उसमें ही हमें समय बीतने की अनुभूति होती है। नितांत अंधेरे में बैठे रहने पर भी हमें समय के गुजरने का आभास होता रहता है। वाह्य दुनिया में यदि सब कुछ ठहरा हुआ है तो भी हमारे मस्तिष्क में निहित यह केन्द्र समय बीतने की सूचना देता रहता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि मनुष्य के शरीर में एक 'जैविक घड़ी' होती है, उसी से उसे
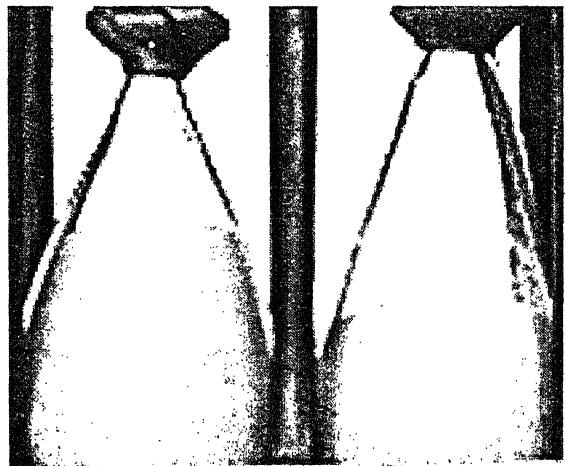
समय का भान होता है। अनुसंधान से पता चला है कि हमारी कनपटी के पास स्थित पीनियल ग्रंथि समय के एहसास के लिए उत्तरदायी है। इससे स्रावित होने वाला मैलाटोनिन नामक रसायन मनुष्य में जैविक घड़ी का निर्धारण करता है। अध्ययन से इस बात की पुष्टि हुई है कि जानवरों और पक्षियों में भी समय की अनुभूति होती है।

काल निर्धारण खगोलीय पिंडों की आवर्ती गति से जुड़ा है। पृथ्वी जितनी देर में अपनी धुरी पर एक चक्कर लगा लेती है उसे एक सौर दिन कहते हैं। इसमें दिन और रात की अवधि आती है, यद्यपि यह वर्ष के दौरान बदलती रहती है। उसी तरह पृथ्वी जितनी देर में सूर्य के परितः एक परिक्रमा पूर्ण करती है उसे एक सौर वर्ष कहते हैं। चंद्रमा जितनी देर में पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर लगा लेता है उस काल का हम करीब एक महीना मानते हैं। समय के साथ समय निर्धारण के लिए बनाए जाने वाले यंत्रों में परिष्कार आता गया। वैज्ञानिक विकास के साथ समय की अवधारणा में आमूल परिवर्तन हुआ। न्यूटन ने समय को निरपेक्ष माना था तथा उसके सापेक्ष गतिशील पिंडों की गति के सूत्र निगमित किए। लेकिन बाद में बीसवीं सदी के महान भौतिकशास्त्री अल्बर्ट आइंस्टाइन ने सापेक्षवाद का सिद्धान्त प्रस्तुत कर न्यूटन के मत को पूरी तरह से खारिज कर दिया।

समय : चौथा आयाम

आइंस्टाइन के अनुसार समय का सीधा संबंध गति से है। उनके अनुसार इस ब्रह्माण्ड में त्रिआयामों के अलावा भी एक और आयाम है। वह चौथा आयाम है समय। दिक् और काल की इस चतुर्आयामी अवधारणा ने भौतिकी का स्वरूप बदल दिया। भौतिकशास्त्रियों का मानना है कि दिक् एवं काल भी शाश्वत, अनादि और अनन्त नहीं है। उनके अनुसार तब से करीब 15 अरब वर्ष पूर्व एक अतिसंकेन्द्रित पिंड में महाविस्फोट से ही संपूर्ण ब्रह्मांड पैदा हुआ। इसे प्राथमिक परमाणु कहते हैं। खुद काल भी तभी अस्तित्व में आया। आज प्रयोगों द्वारा इन बातों की पुष्टि हुई है। आइंस्टाइन के सापेक्षवाद के सिद्धान्तानुसार गति के साथ समय की भुजा प्रभावित होती है। जैसे जैसे गति बढ़ेगी, समय की भुजा सिकुड़ेगी। नित्यप्रति के हमारे सांसारिक अनुभवों में ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता। ऐसा इसलिए क्योंकि होने वाला फर्क नगण्य होता है। लेकिन जब किसी पिंड की गति प्रकाश के वेग के करीब पहुँचती है तो यह फर्क बड़ी तेजी से बढ़ने लगता है। सैद्धांतिक तौर पर किसी पिंड का वेग प्रकाश के वेग के बराबर नहीं हो सकता क्योंकि ऐसे में पिंड का द्रव्यमान अनंत हो जाएगा।

समय के संकुचन को इस उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लीलिए एक 50 वर्षीय अंतरिक्ष यात्री राकेटयान से प्रकाश के समतुल्य वेग से धरती से किसी सुदूर ग्रह की यात्रा पर जाता है। पृथ्वी पर मौजूद समय के मुताबिक वह 20 साल बाद अपनी धरती पर वापस आता है। यात्रा पर जाते समय उसका बेटा पच्चीस साल का था। लौटकर आने पर जाहिर है उसकी उम्र होगी 45 साल। बेटा ही क्यों, परिवार और समाज के दूसरे मौजूद जन भी जब 20 साल पुराने होंगे। लेकिन अंतरिक्ष यात्री 65 का नहीं होगा। संभव है कि वह 65 की जगह 55 या 60 वर्ष का ही हो। यह उसके यान की गति पर निर्भर करेगा। समय का यह फर्क इसलिए होगा क्योंकि अंतरिक्षयात्री के लिए समय का प्रवाह धरती जैसा नहीं रहा। उसके लिए दिक् और काल का संदर्भ फ्रेम अलग था। स्टीफन हाकिंग के अनुसार प्रकाश के वेग के अलावा प्रकृति में कुछ भी निरपेक्ष नहीं है और प्रकाश का वेग भी गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होता है। भारत में योगियों के बारे में कहा जाता है कि वे योग के द्वारा काल से परे यानी कालातीत स्थिति में चले जाते हैं। भौतिकविद् पॉल डैविस ने अपनी पुस्तक 'एबाउट टाइम' में उल्लेख किया है कि उन्हें अपनी भारत यात्रा के दौरान ऐसे योगियों से मिलने का अवसर मिला था जिनका दावा था कि वे योग के द्वारा समय को रोक सकते हैं। वैसे इन बातों और दावों का कोई वैज्ञानिक आधार आज तक नहीं मिला है।

काल की गणना का एक रोचक इतिहास है। समय मापक युक्ति घड़ी का निरन्तर विकास हुआ है। अपनी विकास यात्रा में यह धूपघड़ी, बालूघड़ी से होते हुए कमानी, लोलक, क्वाट्‌र्ज और आज परमाणु घड़ी तक आ पहुँची है। क्वाट्‌र्ज घड़ियाँ काफी सटीक समय देती हैं। उनके क्वाट्‌र्ज (सिलिकान डाइआक्साइड) क्रिस्टल के कंपन्न से समय की माप करते हैं। ऐसी घड़ियों में दस साल में एक सेकेंड का फर्क पड़ सकता है। आज हमारा आविष्कार परमाणु घड़ी तक पहुँच गया है। ये सबसे शुद्ध समय बताती हैं। एक परमाणु घड़ी 30 हजार वर्षों में जाकर एक सेकेंड का विचलन दे सकती है। इनमें सीजियम परमाणु के कंपन को आधार मानकर काल गणना की जाती है। ध्यान देने की बात है कि परमाणु घड़ियाँ घंटा–मिनट में समय नहीं बतातीं बल्कि ये सिर्फ समय बीतने की सूचना देती हैं। निःसंदेह आपने जब से यह लेख पढ़ना शुरू किया तब से इसके समापन तक कितने क्षण बीत गए जो फिर से वापस आने वाले नहीं हैं क्योंकि कालचक्र एक दिशा में प्रवाहमान है।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मौलिक अनुसंधान केन्द्र
वी.एन.पुरव मार्ग, मानखुर्द
मुम्बई-400088

नए खगोलीय खोज तथा पृथ्वेतर सभ्यता के अस्तित्व की संभावना

डॉ0 प्रदीप कुमार मुखर्जी
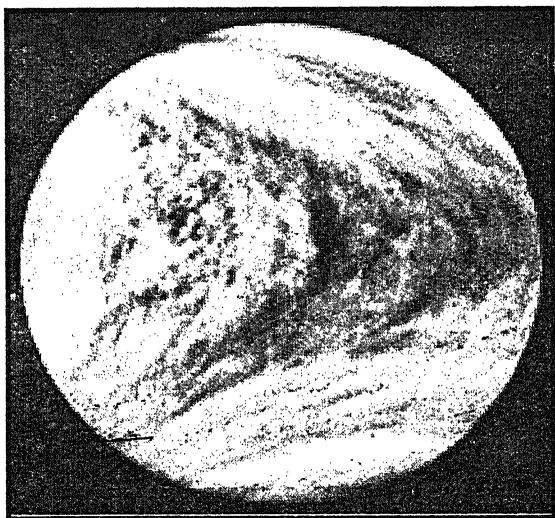
खगोलविदों का अमूमन सारा ध्यान मंदाकिनियाँ, निहारिकाएँ, नवतारे, पल्सार, क्वासर तथा कृष्ण विवर अैर डार्क मैटर की जटिल गुत्थियों को सुलझाने में ही लगा रहता है। लेकिन हाल ही में ग्रहों ने भी खगोलविदों के ध्यान को फिर से आकर्षित किया है। डेढ़–दो वर्ष पूर्व यह चर्चा काफी जोरों पर थी कि हमारे सौर मंडल के दसवें ग्रह को ढूँढ लिया गया है। लेकिन इस खोज पर अभी अंतिम मोहर नहीं लग पाई है। अतः फिलहाल हमारे सौर मंडल में केवल नौ ग्रहों का ही अस्तित्व है।

प्लूटो ग्रह के बारे में भी एक बड़ी विचारणीय समस्या उठ खड़ी हुई जो बड़ी चौंकाने वाली है। प्लूटो के ग्रह होने के बारे में ही अब खगोलविद संदेह उठा रहे हैं। कुछ खगोलविद प्लूटो को परानेप्च्यूनीय पिंड (ट्रांस नेप्च्यूनियन आब्जेक्ट) की संज्ञा दे रहे हैं तो कुछ का मानना है कि प्लूटो में ग्रह तथा परानेप्च्यूनीय पिंड दोनों के ही अभिलक्षण मौजूद हैं। यानी जब दसवें ग्रह के होने की बात चल रही है तो उसके साथ साथ और ग्रह के अस्तित्व के बारे में ही प्रश्नचिन्ह लगाया जा रहा है।

हमारे सौर मंडल का सूर्य तो आकाशगंगा मंदाकिनी का बस एक सामान्य तारा ही है। इन तारों के भी अपने ग्रह तथा अपनी ग्रहमालिकाएँ (प्लेनेटरी सिस्टम) हो सकती हैं। हम केवल अपने ग्रह पृथ्वी के जीव जगत से ही परिचित हैं। लेकिन सौर मंडल से बाहर अन्य ग्रह अथवा सूर्य से इतर अन्य तारों की ग्रहमालिकाओं में से किसी ग्रह पर भी संभवतया जीवन के उद्‌भव और उसके विकास के लिए अनुकूल भौतिक परिस्थितियाँ पाई जा सकती हैं।

दूसरे ग्रहों पर जीवन की संभावना को ढूँढने के प्रयास खगोलविद एक अर्से से ही कर रहे हैं। 'एलन हिल्स' नामक एक उल्का पिंड के गहन अध्ययन के बाद अमेरिकी अंतरिक्ष विभाग 'नासा' के वैज्ञानिकों ने अगस्त, 1996 में एक सनसनीखेज घोषणा की थी कि करीब 4 अरब साल पहले मंगल ग्रह पर छोटे, एककोशिकीय जीवों का अस्तित्व था। हालाँकि इस खोज पर गंभीर विवाद भी उठ खड़े हुए लेकिन कुछ खगोलविदों ने कहा कि इन विवादों के बावजूद एक बात जरूर मुखरित होकर सामने आई है कि अन्य किसी ग्रह पर भी जीवन या पृथ्वेतर सभ्यता का अस्तित्व

हो सकता है।

लेकिन विचारणीय प्रश्न है कि दूसरे ग्रहों तथा ग्रहमालिकाओं के बारे में आखिर पता कैसे लगाया जाए ? इसके लिए वैज्ञानिकों द्वारा नए खगोलीय साधनों का विकास किया गया है।

सन् 1983 में अवरक्त खगोल उपग्रह (इंफ्रारेड एस्ट्रोनामी सेटेलाइट) द्वारा किसी तारे के चारों तरफ बने डिस्क या चकरी का चित्र लेना संभव हो पाया। इसी चकरी से ही बाद में ग्रहों का जन्म होता है। कथित उपग्रह ने बीटा पिक्टोरिज नामक तारे के इर्द–गिर्द एक चकरी के मौजूद होने का संकेत दिया। बाद में हब्बल अंतरिक्ष दूरबीन द्वारा भी तारों के चारों तरफ बनने वाली इन चकरियों का चित्र लेना संभव हो पाया।

इस तरह से प्राप्त अवरक्त बिंब (इंफ्रारेड इमेज) तारों के इर्द गिर्द बनने वाले डिस्क के बारे में तो जानकारी प्रदान करते हैं लेकिन ग्रहों की मौजूदगी के बारे में भी जानकारी दे पाने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। इसके लिए खगोलविद न्यूटन के गति के तीसरे नियम कि हर क्रिया की बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया होती है, का सहारा लेते हैं।

जब किसी तारे के चारों तरफ कोई ग्रह घूमता है तो वह तारा उस ग्रह पर अपना गुरुत्वीय प्रभाव डालता है। बदले में वह ग्रह भी उस तारे पर अपना गुरुत्वीय बल लगाता है। हालाँकि तारे के अधिक द्रव्यमान के कारण ग्रह द्वारा उस पर लगने वाला बल काफी क्षीण होता है लेकिन इससे तारों में एक हल्का सा कम्पन्न या थरथराहट उत्पन्न होती है। फलस्वरूप डाप्लर प्रभाव' नामक परिघटना के कारण तारे से प्राप्त होने वाले प्रकाश के तरंगदैर्घ्य में परिवर्तन होता है जिसे अधुनातन स्पेक्ट्रास्कापी तकनीकों द्वारा परिशुद्धतापूर्वक नापा जा सकता है। इन मापनों द्वारा ही खगोलविद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी तारे का ग्रह कितना बड़ा तथा उससे कितनी दूरी पर स्थित है।
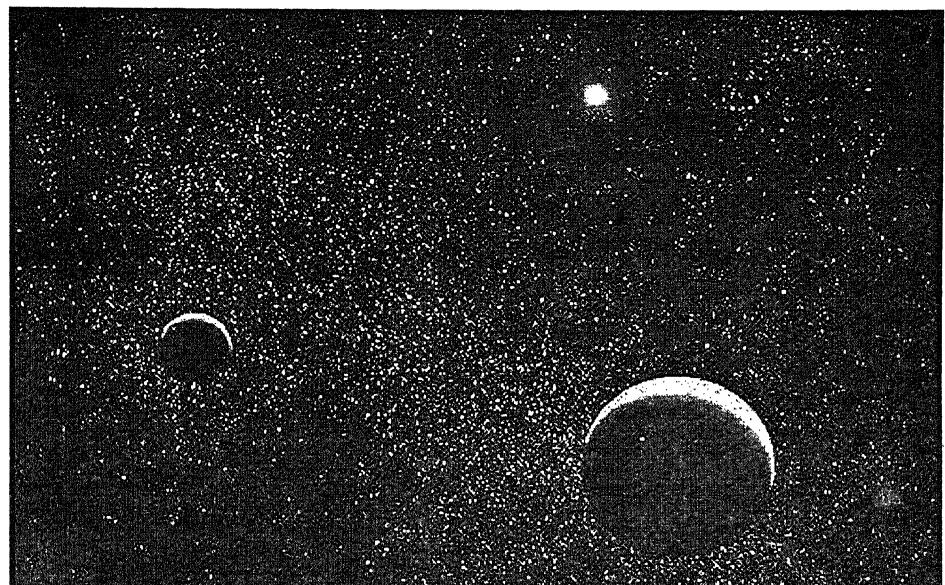
इसी खगोलीय तकनीक द्वारा 1995 में 51 पैगासी नामक तारे के एक ग्रह को खोज पाने में सफलता मिली। सूर्य जैसे द्रव्यमान वाला 51 पैगासी तारा हमसे 40 प्रकाश वर्ष (एक प्रकाश वर्ष लगभग 94,63,00,00,00,000 किलोमीटर के बराबर है) दूर है। इस तारे का चक्कर काटने वाले ग्रह का द्रव्यमान बृहस्पति के द्रव्यमान के आधे से कुछ अधिक है।

गौरतलब है कि अब तक 70 से ही अधिक ऐसे ग्रहों का पता लगाने में खगोलविदों को सफलता मिली है। इनमें से अधिकतर ग्रह एकल रूप से एक ही तारे

का चक्कर काट रहे हैं जबकि कुछ ग्रह सम्मिलित रूप से एक ही तारे के चारों ओर घूम कर ग्रहमालिकाओं की रचना भी कर रहे हैं।

खगोलविदों ने ऐसे तीन तारों का पता लगाया है जिनकी ग्रहमालिकाओं में एक से अधिक ग्रह मौजूद हैं। इनमें से एक उदाहरण अप्साइलन देवयानी नामक तारे का है जिसकी ग्रहमालिका में तीन ग्रह मौजूद हैं। देवयानी तारा मंडल में स्थित यह तारा हमसे 44 प्रकाश वर्ष दूर है। इस तारे के सबसे नजदीक के ग्रह को 1996 में खोजा गया था जबकि शेष दोनों ग्रहों की खोज 1999 में हुई थी। खगोलविदों के अनुसार अप्साइलन देवयानी के ये ग्रह बृहस्पति की तरह गैसीय सतह वाले हैं। अतः उन पर किसी किस्म के जीव जगत के अस्तित्व की कोई संभावना नहीं दिखती है।

हाल ही में खगोलविदों ने उर्सा मेजर तारामंडल (जिसे 'बिग डिपर' या 'ग्रेट बियर' नाम से भी जाना जाता है) में स्थित 47 उर्सा मेजोरिस नामक तारे की ग्रहमालिका की खोज की जिसमें दो ग्रह मौजूद हैं। हमसे 45 प्रकाश वर्ष दूर स्थित इस तारे की रासायनिक संरचना को खगोलविद सूर्य सदृश ही बता रहे हैं।

इस तारे की ग्रहमालिका के दोनों ग्रह सौरमंडल के ग्रहों की तरह ही अपने तारे की लगभग वृत्ताकार कक्षाओं में परिक्रमा कर रहे हैं। यहाँ इस तथ्य का उल्लेख बेहद जरूरी है कि अब तक खोजे गए सभी ग्रहों की कक्षाएँ अधिकांश रूप से दीर्घवृत्तीय ही हैं। इस तरह की कक्षाओं के कारण ग्रह का तापमान असहनीय मान को छूने के साथ साथ हिमांक के भी बहुत नीचे गिर सकता है। दरअसल तापमान में यह फेरबदल तारे और ग्रह के बीच की दूरी पर आश्रित है। ग्रह के तारे के बहुत नजदीक चले आने पर तापमान बहुत अधिक तथा बहुत दूर चले जाने पर तापमान बहुत कम हो जाता है। फलतः जीव जगत के अस्तित्व की संभावना ऐसे ग्रहों पर असंभव सी प्रतीत होती है।

हालाँकि खोजी गई नई ग्रहमालिका के दोनों ग्रहों की कक्षाएँ लगभग वृत्ताकार हैं लेकिन ये दोनों ग्रह बृहस्पति की तरह ही गैसीय सतह वाले हैं। अतः खगोलविदों का कहना है कि इन ग्रहों पर जीव जगत के अस्तित्व की कोई संभावना नजर नहीं आती है। लेकिन उनका यह भी कहना है कि 47 उर्सा मेजोरिस तारे के इर्द गिर्द काफी सारा स्थान रिक्त पड़ा हुआ है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के खगोलविद जिओफ मार्सी के अनुसार इस विशाल रिक्त स्थान में छोटे ग्रह मौजूद हो सकते हैं जिन पर जीवन के पनपने के लिए सभी उपयुक्त भौतिक परिस्थितियाँ पाई जा सकती हैं। लेकिन अगर ये छोटे ग्रह मौजूद हैं तो भी उनका पता लगाने में खगोलविदों को अभी वर्षों लग जाएँगे, ऐसा मार्सी का कहना है।

ग्रहमालिकाओं खासकर इस नई ग्रहमालिका की खोज ने वैज्ञानिकों को एक बार फिर से यह सोचने के लिए विवश कर दिया है कि संभवतया इस विशाल ब्रह्मांड में हम अकेले नहीं हैं।

अगर मंगल की मिट्टी में एककोशी जीवों के जीवाश्म पाए जा सकते हैं तो खगोलविदों का कहना है कि सुदूर ग्रह पर भी जीवित प्राणियों का अस्तित्व हो सकता है। और यह भी हो सकता है कि उनमें बुद्धिमान प्राणी भी हों जिनकी अपनी सभ्यता एवं विकसित प्रौद्योगिकी तक हो।

लेकिन अगर ऐसे प्राणी हैं तो वे हमसे सम्पर्क क्यों नहीं करते हैं तमाम वैज्ञानिक कोशिशों के बावजूद हमारी रेडियो दूरबीनों पर अन्य सभ्यता के संकेत क्यों नहीं ग्रहण होते हैं ? अंतरिक्ष में आखिर यह सन्नाटा क्यों है ? शायद आने वाला समय ही इसका रहस्योद्घाटन कर सके।

43, देशबन्धु सोसाइटी
15, पटपड़गंज
दिल्ली–110092

स्वास्थ्य

गर्भकालीन पोषाहार से जुड़े कुछ तथ्य

डॉ० विनया पेंडसे

मनुष्य जीवन के हर काल में स्वस्थ रहने के लिए पोषाहार महत्वपूर्ण है परन्तु गर्भकाल में यह और भी महत्वपूर्ण बन जाता है क्योंकि शिशु जीवन व विकास पूर्णतया इस पर निर्भर है। गर्भवती महिला यह आपूर्ति अपने आहार के द्वारा कर सकती है। अगर किसी कारण से वह आवश्यक पोषक तत्व उसे नहीं या कम या अधिक मात्रा में करवाती है तब उसका प्रभाव शिशु विकास पर पड़ता है। किस प्रकार का प्रभाव शिशु के किस अंग व विकास पर पड़ता है यह एक विस्तृत व जटिल विषय है। इस पर निरन्तर शोधकार्य चल रहा है। प्रौद्योगिकी व जैवरासायनिक क्षेत्र में हुई प्रगति से इस दिशा में काफी शोध हुआ है। सोनोग्राफी विकसित होने के बाद शिशु विकास का अध्ययन आसान हुआ है। हमारे यहाँ पर समस्या गर्भस्थ शिशु के लिए पोषक तत्व की अधिकता की नहीं बल्कि कम उपलब्धि या अभाव की है। इसका किस प्रकार से प्रभाव पड़ता है यह समझने के लिए शिशु विकास की कुछ बातों को समझना आवश्यक है।

शिशु विकास

हमारा शरीर विभिन्न अंगों से निर्मित है। अंग कई प्रकार के ऊतकों से व ऊतक कोशिकाओं से निर्मित हैं। कोशिका हमारे शरीर की सूक्ष्मतम रचना व क्रियात्मक इकाई है। गर्भ की शुरुआत दो मिलकर एक हुई कोशिका से होता है। आपस में मिलने वाली यह दो अतिविशिष्ट मात्र प्रजनन हेतु निर्मित कोशिकाएँ महिला का डिम्ब व पुरुष का शुक्राणु है। इस एक होने की क्रिया को निषेचन कहते हैं। निषेचन के कुछ घण्टे बाद डिम्ब की विभाजन क्रिया शुरू होती है। एक से दो, दो से चार– इस प्रकार क्रमशः होते होते एक मानव शरीर, उसके आसपास सुरक्षा आवरण, उस जीवनकाल का साथी अपरा इत्यादि का निर्माण होता है। इसे गर्भ कहते हैं व यह गर्भाशय में विकसित होता है। कोशिका विभाजन व अंग निर्माण आनुवांशिक अंकित व्यवस्था के अनुसार होता है। गर्भावस्था के आरम्भिक काल में अलग–अलग अंगों की नींव कालानुसार पड़ती है व रूपरेखा तैयार होती है।

इस प्रकार लगभग दो महीने का गर्भ 4 सेमी लम्बा व दो ग्राम वजन का हो जाता है। वजन बढ़ने यानी पूरे शरीर की बढ़त की गति पाँचवें महीने से तेज होती है। छठे महीने में शिशु का वजन 600 ग्राम हो जाता है। नौ महीने के अन्त यानी पूर्णकाल में शिशु लगभग 50 सेमी लम्बा व 3000 ग्राम का होता है। गौर करें शिशु का 4/5 यानी 80 प्रतिशत वजन उसके अन्तिम तीन महीनों में बढ़ता है। स्पष्ट है शिशु विकास का आरम्भिक काल अधिक रचनात्मक व अन्तिम त्रैमासिक काल आकार व भार में बढ़ने का है।

कोशिकाओं का विभाजन, अंगों का निर्माण, विभिन्न क्रियाएँ आरम्भ होकर सुचारु रूप से आगे बढ़ना इत्यादि की दृष्टि से गर्भकाल जीवन का सबसे महत्वपूर्ण व साथ साथ नाजुक व जटिल भी होता है। इस कारण गर्भ को सही वातावरण, ऊर्जा व पोषक तत्व मिलना प्राथमिकता है। ऊर्जा पोषक तत्वों से प्राप्त होती है व वातावरण पोषक तत्वों की उपलब्धि को सुनिश्चित करता है।

गर्भ को पोषक तत्वों की उपलब्धि

हर कोशिका को जीवित रहने व सुचारु रूप से कार्य करने के लिए ऊर्जा व पोषक तत्वों की आवश्यकता है। पोषक तत्वों का संचरण हमारे शरीर में रक्त के द्वारा होता है। इसीलिए रक्त संचरण हमारे पूरे शरीर में होता है। शरीर में जहाँ पर नव निर्माण व क्रियाएँ स्थापित होती हैं वहाँ पर पोषक तत्व व ऊर्जा की माँग बढ़ना स्वाभाविक है। गर्भ एक साधारण व लघु अंग निर्माण नहीं है। यह एक पूर्ण शरीर का निर्माण है। इसलिए पोषक तत्वों की माँग उसी अनुपात में बढ़ती है। इसके साथ साथ गर्भावस्था में माँ के शरीर में भी परिवर्तन होते हैं– जैसे गर्भाशय व स्तन की बढ़त, रक्त की मात्रा बढ़ना इत्यादि। अतः उस दृष्टि से भी पोषक तत्वों की माँग बढ़ जाती है।

गर्भ को पोषक तत्व माँ के रक्त से पहुँचते हैं। आरम्भिक काल में गर्भ अपने आवरण पर उगे हुए सूक्ष्म अंकुरों व चौथे महीने से अपरा के माध्यम से इसे अवशोषण व अन्य क्रियाओं से प्राप्त करता है। अगर किसी भी कारण से माँ के रक्त में पोषक तत्वों की कमी है तब शिशु एक सीमा तक थोड़ा अधिक लेने का प्रयत्न कर काम चलाता है परन्तु उसने जो कुछ प्राप्त किया वह उसके लिए पर्याप्त नहीं होता है। उसे अपनी माँग के अनुसार या अपने हिस्से का पूरा नहीं मिलता है जिसका विपरीत प्रभाव उसकी बढ़त व स्वास्थ्य पर पड़ता है। माता की कुपोषण अवस्था में गर्भस्थ शिशु कुपोषित व कमजोर होता है– यह एक प्रामाणिक तथ्य है। कुपोषण का अर्थ है शरीर में पोषक तत्वों की कमी।

कम उपलब्धि के परिणाम

पोषक तत्वों की उपलब्धि के कोशिका विभाजन पर प्रभाव सम्बन्धी किए गए अध्ययन यह बताते हैं कि शिशु निर्माण में कोशिका विभाजन के निश्चित व निर्णायक दौर होते हैं। विभाजन की अवधि में अगर आवश्यक सामग्री यानी समुचित पोषक तत्व नहीं मिले तब कुछ में यह दौर रुक जाता है, सब में नहीं। इस कमी की आपूर्ति बाद में नहीं होती है फलतः वह अंग निर्मित तो हो जाता है परन्तु वह मजबूत नहीं होता है। आशय यह है कि कोशिकाएँ अपनी आवश्यकता पूरी करने हेतु इन्तजार नहीं करती हैं यानी शिशु विकास रुकता नहीं है बल्कि कमजोर कुपोषित शिशु निर्माण होता है।

गर्भकाल में कुपोषित बालकों पर किया गया अध्ययन यह बताता है कि निरन्तर प्रभाव शारीरिक बढ़त, रोग प्रतिरक्षा सक्षमता, तान्त्रिकी व बोध विकास पर पड़ता है। ऐसे बालक प्रतिस्पर्धा, शैक्षणिक गतिविधियों में पिछड़ते हैं। गर्भकालीन कुपोषण का प्रभाव मनुष्य के जीवन भर लक्षित होता है। जीवनकाल के मध्यांतर होने वाली विभिन्न स्वास्थ्य समस्याएँ जैसे मुटापा, मधुमेह, हृदय व रक्तसंचार संस्थान के रोग जैसे उच्च रक्तचाप, दिल का दौरा इत्यादि की आवृत्ति अधिक पाई गई है।

कुपोषण हमारे देश की गम्भीर समस्या है परन्तु अति गम्भीर है गर्भवती महिलाओं व बालकों का कुपोषण। क्या आप जानते हैं कि विश्व के सबसे अधिक कुपोषित बालक (53.3 प्रतिशत) कमजोर व वजन वाले नवजात शिशु (30–40 प्रतिशत), अल्परक्तता के शिकार माता व बच्चों (58.8 प्रतिशत) की संख्या भारत में हैं। लगभग 80 प्रतिशत गर्भवती महिलाएँ अल्परक्तता की शिकार हैं। हमारे यहाँ की मातृ व बाल मृत्यु दर बहुत ऊँची है। क्या हम इन तथ्यों की अनदेखी कर सकते हैं ? आए दिन मीडिया द्वारा प्रस्तुत किया गया आतंकवाद, दुर्घटनायें, राजनीतिक गतिविधियाँ, हिंसा इत्यादि से हम प्रभावित होते हैं। हमारे देश की वह गम्भीर समस्या क्यों हमें प्रभावित नहीं करती है ? क्या इस स्वास्थ्य व पोषण अवस्था के रहते देश का विकास सम्भव है ? याद रखें, हमारा देश खाद्य व कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भर है फिर यह पोषाहार उस माँ की कोख में क्यों नहीं पहुँचता यह विचारणीय बिन्दु है।

10-11, बनेड़ा हाउस
फतहपुरा, उदयपुर-313004

पुस्तक समीक्षा

महासागर विकास के महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. समुद्र विज्ञान के दो दशक
संपादक : श्री अनिल मिश्रा, श्री गिरीश पिल्ले, के. नारायणन तथा मंजुला मेहता
प्रकाशक : सागर विकास विभाग, ब्लाक 12, सी.जी.ओ. काम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली–3
पृष्ठ संख्या : 122

महासागर विकास विभाग की ओर से 22 जनवरी 2001 को 'समुद्र विज्ञान के दो दशक' शीर्षक से एक संगोष्ठी आयोजित की गई थी। इसमें 15 लेख पढ़े गए, जिन्हें पुस्तकाकार के रूप में प्रकाशित किया गया है। लेखों के शीर्षक हैं: अंटार्कटिक विज्ञान के दो दशक, दक्षिण महासागर में हिमखण्डों का प्रवाह और फैलाव, अंटार्कटिक अभियान में राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला का योगदान, सागर स्थिति पूर्वानुमान, महाद्वीपीय शेल्फ, संचयात्मक माडलों द्वार समुद्री चक्रवातों का पूर्वानुमान, गहरे समुद्र के गहरे विवाद, अंटार्कटिक संधि का महत्व, महासागर से बहुधात्विक पिण्डिकाओं की खनन पद्धति एवं विश्लेषण, एक मेगावाट क्षमता का भारतीय समुद्र ऊर्जा ताप अन्तरण प्लावी संयंत्र, समुद्री शैवाल, समुद्री पिण्डिकाओं के अवशिष्ट द्वारा प्रदूषित जल से सीसे एवं जस्ते का अवशोषण, इकमाम परियोजना निदेशालय, चेन्नई, अंटार्कटिक अभियान के दौरान मनोवैज्ञानिक समस्याएँ तथा भारतीय महाद्वीपीय शेल्फ की बाह्य सीमाओं का रेखांकन्।

ये शोधनिबन्ध उपयुक्त आरेखों तथा चित्रों से सुसज्जित हैं। ये लेख गोवा, फरीदाबाद, नई दिल्ली, जमशेदपुर, चेन्नई के वैज्ञानिकों द्वारा मूलतः हिन्दी में लिखे और प्रस्तुत किए गए। लेखों में युक्त शब्दावली स्वीकृत मानक शब्दावली है और प्रत्येक लेख के अन्त में निर्देश दिए हुए हैं।

इतनी संख्या में शोधपरक निबन्धों का किसी विशेष विषय पर प्रस्तुत किया जाना अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। यह सामग्री शोधार्थियों के लिए दिशासूचक सिद्ध होगी और देश की राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के वैज्ञानिकों को हिन्दी में अपने विचार व्यक्त करने के लिए प्रेरणा प्राप्त होगी। निश्चित रूप से यह प्रशसंनीय प्रयास है।

2. सागर सूचना
सम्पादक तथा प्रकाशक पूर्ववत्

भारत में वर्षों से कई संस्थाएँ/अभिकरण संगत समुद्र वैज्ञानिक आँकड़े एकत्र कर रहे हैं जो इन संस्थाओं का खोज का भी विषय रहा है। किन्तु अभी तक कोई ऐसा एक तंत्र नहीं है जो प्रयोक्ताओं को अनुसंधान विकास और अनुप्रयोग के लिए जानकारियाँ दे सके। सौभाग्यवश भारत सरकार के महासागर विकास विभाग ने एक निकाय स्थापित किया है जिसे भारतीय समुद्र सूचना सेवा केन्द्र कहा जाता है जो हैदराबाद में स्थित है। इस केन्द्र ने आम जनलोगो में समुद्र विज्ञान के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से 'सागर सूचना' नाम पर पुस्तिका प्रकाशित की है।

इस पुस्तक में 14 लेख हैं : चक्रवात महोर्मि पूर्वानुमान की आधुनिक तकनीक, मत्स्य संवर्धन पारिस्थितिकी, प्रतिरूप उपग्रह द्वारा समुद्र विज्ञान

सम्बन्धी भौतिक प्राचल आँकड़ों की पुनः प्राप्ति, समुद्री सूचना में कृत्रिम उपग्रह के आँकड़ों की उपयोगिता, विज्ञान में हिन्दी की पैठ, उष्णकटिबंधीय चक्रवातों के दौरान समुद्र प्रतिक्रिया का अध्ययन भारत के पूर्वी तट पर उत्प्रवाह का पूर्वानुमान, सागरीय अवलोकन तथा सागर की पृष्ठस्तरीय प्रक्रियाओं का अध्ययन, ओशन सेट, आँकड़ों का मछुवाही के लिए उपयोग, मत्स्य संभाव्य क्षेत्र फैलाव एवं उपयोगिता, विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी, कालानुक्रम आधार पर भारतीय समुद्र के सतही मौसम वैज्ञानिक और समुद्र वैज्ञानिक प्राचल, मौसम पूर्वानुमान में समुद्र का योगदान, मानसून संबंधी पूर्वानुमान का विकास।

उपर्युक्त लेख संगोष्ठी में पढ़े गए थे। ये सभी लेख अत्यन्त शोधपरक हैं। केवल दो लेख विषय से हटकर हैं– विज्ञान में हिन्दी की पैठ तथा विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी।

नई पत्रिका

पशुधन अनुसंधान : दिसम्बर 2002, खण्ड 3 अंक 2

राजभाषा अनुभाग, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, उत्तर प्रदेश।

यह शोधपत्रिका है जो विगत 3 वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इस अंक में 7 शोधपत्र हैं और 8 लोकप्रिय लेख हैं। शोध लेखक बकरियों तथा शूकरियों से सम्बद्ध है। लोकप्रिय लेखकों से जानवरों के लिए एक्युपंक्चर तथा वर्मीकम्पोस्ट, पशु पक्षियों पर पर्यावरण प्रदूषण का कुप्रभाव मुख्य है।

अन्तिम लेख भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान की महत्वपूर्ण उपलब्धियों को बताता है।

हिन्दी में शोधपत्रिकाओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। यह पत्रिका उसी शृंखला में एक नई कड़ी है। इसका स्वागत है।

– डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

आदमखोरों के बीच (शिकार कथाएँ)

लेखक : श्री रामेश बेदी
प्रकाशक : राजकमल प्रा0 लि0, बी, नेताजी सुभाष चन्द्र मार्ग, नई दिल्ली–110002
मुद्रक : बी0के0 आफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032
पहला संस्करण : 2001, **पृष्ठ संख्या** : 243, **मूल्य** : 195 रुपए

समीक्ष्य पुस्तक प्रसिद्ध वन्यप्राणि विशेषज्ञ रामेश बेदी की एक और सुन्दर कृति है। 143 पृष्ठों, 9 अध्यायों, 9 रंगीन चित्रों, 79 रेखाचित्र एवं श्वेत–श्याम चित्रों वाली यह पुस्तक वैसे तो मूलरूप से शिकार कथाओं का संकलन है, किन्तु शिकार कथाओं के माध्यम से लेखक ने जहाँ एक ओर हिंसक जानवरों द्वारा मनुष्य पर ढाए जाने कहर का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है, वहीं दूसरी ओर जंगलों के सफाए से जंगली जानवरों की नष्ट होती जीव सम्पदा और उससे होने वाली पर्यावरणीय क्षति की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पुस्तक मात्र सुनी–सुनाई या पढ़ी–पढ़ाई बातों का संकलन मात्र न होकर लेखक के जोखिम भरे स्वयं के अनुभवों का निचोड़ है।

हम सभी जानते हैं कि प्रकृति में पाए जाने वाले समस्त पेड़–पौधे, पशु–पक्षियों, हवा, पानी और मिट्टी में आपसी तालमेल और संतुलन बना रहता है। जंगली जानवर भोजन के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं और भोजन की शृंखला चलती रहती है, किन्तु अब यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है कि आदमी जिस तरह से, जिस तेजी से जंगलों को काटा है और अभी भी अवैध रूप से काटता जा रहा है, और जिस प्रकार वन्य जीवों का शिकार किया है, उससे न केवल जंगलों और वन्यजीवों की संख्या में कमी आई है वरन् पर्यावरण

लेखक की इसी चिंता का परिणाम है यह पुस्तक।

लेखक ने पुस्तक की सामग्री एकत्र करने में तरह–तरह के खतरों का सामना किया है, अनेक अवसरों पर तो, वे मौत के मुँह से निकले हैं। उनकी आँखों के सामने हिंसक जानवरों ने आदमियों और पशुओं को अपना शिकार बनाया है। उन्हें अनेक ऐसे लोग भी मिले हैं जो गंभीर रूप से घायल होने के बाद भी अपने साहस, अपनी सूझबूझ के बलबूते मौत के चंगुल से बाहर निकल आए हैं।

पुस्तक वन्य प्राणियों, विशेष रूप से शेर, तेंदुए और अन्य हिंसक जानवरों की आदतों, उनके रहन सहन से संबंधित जानकारियों का खजाना है। 'गागर में सागर' वाली उक्ति चरितार्थ होती है। और तो और पुस्तक शिकारियों की सोच को बदलने में पूर्णरूपेण सक्षम है।

पुस्तक की एक और विशेषता यह है कि क्षेत्र विशेष की बोली में प्रयुक्त अनेकानेक शब्दों को इसमें ज्यों का त्यों इस्तेमाल किया गया है। इससे क्षेत्र विशेष की माटी की महक महसूस की जा सकती है। किन्तु पाठकों की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए पुस्तक के अंत में 'पारिभाषिक शब्द' के माध्यम से ऐसे शब्दों की व्याख्या भी प्रस्तुत कर दी गई है। अनेक पेड़ पौधों और वन्य जीवों की सही पहचान के लिए उनके वैज्ञानिक नाम भी दिए हुए हैं। यह जानकारी विषय विशेषज्ञों के बड़े काम की है।

रंगीन और श्वेत श्याम चित्र पुस्तक की रोचकता बढ़ाते हैं, किन्तु वैज्ञानिक नामों में छपाई की भूलें खटकती है। उदाहरण के लिए पृष्ठ 239 पर बाजरी या बाजरा के वैज्ञानिक नाम में 'जीनस' (Genus Ponnisetum) में '0' के स्थान पर 'e' होना चाहिए।

कुल मिलाकर आकर्षक मुखपृष्ठ वाली यह पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है। पुस्तक के प्रकाशन से संबंधित सभी व्यक्ति और संस्थाएँ साधुवाद की पात्र हैं।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
वाई II सी, 115/6, त्रिवेणीपुरम, झूँसी, इलाहाबाद

पृष्ठ 31 का शेष

जाता।' समाज और देश में स्वच्छ पर्यावरण रखने की आवश्यकता पर बल देते हुए गांधी जी ने कहा था कि, 'जो व्यक्ति हवा को दूषित करते हैं, अपशिष्ट या कचरा इधर–उधर फेंकते हैं या जमीन को दूषित करते हैं, वे मनुष्य और प्रकृति दोनों के खिलाफ अपराधी हैं।' गांधी जी का खादी ग्रामोद्योग माडल और पंचायती राज पर्यावरण–अनुकूल सतत् विकास की आदर्श व्यवस्थाएँ हैं। स्पष्ट है कि उत्पादन की यह व्यवस्था आज के लिए अपर्याप्त है किंतु इसे अधिकाधिक बढ़ावा देना नितांत आवश्यक है।

अब यह प्रश्न उठता है कि गांधीवादी पर्यावरण संरक्षण के व्याहवारिक निर्देश क्या हो सकते हैं ? उनके आचरण, सिद्धांतों और कथनों के आधार पर प्रथम दृष्टि में निम्नांकित निष्कर्ष दिए जा सकते हैं जिनका विस्तार करना आवश्यक होगा :

1. पृथ्वी पर सतत् विकास की प्रणाली के अभाव में पृथ्वी रुग्ण होगी जो स्वस्थ पर्यावरण नहीं प्रदान कर सकती है। अतः पृथ्वी के संसाधनों की क्षमता के अनुरूप ही जनसंख्या नियंत्रण करना पर्यावरण संरक्षण हेतु अनिवार्य आधारभूत आवश्यकता है।

2. संसाधनों का सतत् विकास और युक्तिपूर्ण प्रयोग वांछनीय है ताकि मितव्ययिता के साथ इनका प्रयोग हो, न कि भोग–विलास या सुखी जीवनयापन हेतु।

3. पर्यावरण अनुकूल उत्पादन प्रणाली, खादी ग्रामोद्योग का व्यापक विस्तार हो और दूसरी ओर बड़े स्तर पर उत्पादन हेतु कारखानों में अप्रदूषक तकनीकों को बढ़ाया जाए।

4. सर्वोदय आवश्यक है किंतु अंत्योदय या गरीबी उन्मूलन प्रथमतः आवश्यक है, ताकि प्रदूषण की संभावनाएँ न्यूनतम हों। इसके लिए प्रजातंत्र के आधार को ज्यादा सशक्त बनाना यानी पंचायती राज व्यवस्था को दक्षता प्रदान करना आवश्यक है। इन कार्यों में महिलाओं का समान हक और योगदान होना चाहिए। (ज्ञातव्य है कि खादी ग्रामोद्योग कर्मियों में 42 फीसदी महिलाएँ हैं)

5. पर्यावरण संरक्षण हेतु नैतिक एवं अनुशासित व्यवहार (यम–नियम) की आधारभूत आवश्यकता है। पर्यावरण के सभी घटकों के प्रति हिंसा रोकना और बर्बर व्यवहार पर ब्रेक लगाना पर्यावरण संरक्षण की किसी भी उपाय की सफलता हेतु पूर्व शर्तें हैं।

सारांशतः 'सादा जीवन, उच्च विचार' जैसा ऊपर दर्शाया गया है गांधीवादी पर्यावरण संरक्षण की कुंजी है। यह सब आज के समाज में तुरंत नहीं आ सकता, किंतु इसका शुभारंभ आवश्यक है। और अगर इस उपाय को अव्यावहारिक समझा जाता है तो पर्यावरण संरक्षण का लक्ष्य दूर होता रहेगा। शायद विदेशों में ऐसी पहल की जाए तो भारतीयों की आँख खुल सकती है। संभावना है कि चौथी क्रांति होने पर गांधीवादी सतत् विकास तथा पर्यावरण संरक्षण की व्यवस्था प्रमुख रूप से विश्व में उभर कर आएगी।

विचारणीय है कि संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, यूएनडीपी द्वारा सतत् विकास की एक नई प्रणाली का प्रारूप बनाया गया है जिसके चार प्रमुख सूत्र यों हैं: 1. पर्यावरण में हो रही पूर्व क्षति पर रोक लगाना, प्रकृति अनुकूल घटकों का पुनर्जनन और क्षेत्रीय स्तर पर जैव संसाधनों का विकास, 2. सामाजिक–आर्थिक रूप से पिछड़ी या गरीब जनता को पर्यावरण अनुकूल मदद प्रदान करना, 3. महिलाओं को विकास की मुख्य धारा में लाना और पर्यावरण संरक्षण कार्य में उन्हें सन्नद्ध करना तथा 4. स्थानीय स्तर पर रोजगार की संभावनाएँ बढ़ाना और शहर पलायन पर काबू पाना। यह प्रस्ताव गांधीवादी व्यवस्था के समीप है और यूएनडीपी द्वारा गांधी जी को यह सही श्रद्धांजलि साबित हो सकती है।

2/203, देवदर्शन, डोंगरीपाड़ा
घोडबंदर मार्ग, ठाणा-400601

परिषद् का पृष्ठ

विज्ञान संगोष्ठी आयोजित

भारतीय स्टेट बैंक जोधपुर की मुख्य शाखा एवं विज्ञान परिषद् प्रयाग की जोधपुर शाखा के संयुक्त तत्वावधान में स्वास्थ्य सुरक्षा विषयक विज्ञान संगोष्ठी आयोजि की गई। संगोष्ठी का शुभारंभ मुख्य अतिथि डॉ0 सम्पूर्णानन्द आयुर्विज्ञान महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य डॉ0 आर.एन. सिंह द्वारा दीप प्रज्वलन एवं श्री राकेश श्रीवास्तव द्वारा सरस्वती वंदना से हुआ। भारतीय स्टेट बैंक के श्री सुरेन्द्र राज गेलड़ा ने आगंतुकों का स्वागत किया तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग की जोधपुर शाखा के कार्यवाहक सभापति इंजीनियर के.एम.एल. माथुर ने विज्ञान परिषद् प्रयाग एवं जोधपुर शाखा द्वारा की गई विज्ञान सेवा का विस्तृत ब्यौरा दिया।

संगोष्ठी के मुख्य वक्ता डॉ0 डी.डी. ओझा ने दृश्य एवं अदृश्य प्रदूषण के बारे में जानकारी दी तथा बताया कि ध्वनि, तरंग एवं घरेलू प्रदूषण को अदृश्य प्रदूषण के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है। उन्होंने जोधपुर के विभिन्न चौराहों पर किए गए ध्वनि प्रदूषण के बारे में रोचक जानकारी दी। डॉ0 ओझा ने प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई त्रासदी को भी रेखांकित किया तथा मरुस्थल की जल संचयन परम्परा के वैज्ञानिक पक्ष को उजागर किया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ0 आर.एन. सिंह ने जैविक पदार्थों से होने वाले प्रदूषण के बारे में जानकारी दी तथा जलजन्य रोगों के बारे में भी विस्तारपूर्वक बताया। डॉ0 एस.एल. सोलंकी ने स्वास्थ्य सुरक्षा संबंधी उपायों के बारे में विवेचन किया। कार्यक्रम के अध्यक्ष भारतीय स्टेट बैंक, जोधपुर के सहायक महाप्रबंधक श्री हनुमान प्रसाद ने बताया कि प्रदूषण विश्वव्यापी समस्या है अतः इसके बारे में आम जनता को यदि बोलचाल की सरल भाषा में जानकारी दी जाती है तो वे इससे निश्चित रूप से बच सकते हैं। उन्होंने संगोष्ठी की उपयोगिता एवं सार्थकता को बताया। श्री एस.आर. गेलड़ा ने भारतीय स्टेट बैंक द्वारा किए गए पर्यावरण संरक्षण के कार्यों के बारे में जानकारी दी। कार्यक्रम का संचालन परिषद् की जोधपुर शाखा के संयुक्त सचिव श्री राकेश श्रीवास्तव ने किया।

राकेश श्रीवास्तव
संयुक्त सचिव, विज्ञान परिषद् प्रयाग, जोधपुर शाखा

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

25 अगस्त 2002 को विज्ञान परिषद् सभागार में आयोजित स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती स्मृति व्याख्यान के अंतर्गत 'विज्ञान' के पूर्व संपादक, विज्ञान परिषद् प्रयाग के पूर्व प्रधानमंत्री तथा रीवां विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ0 हीरा लाल निगम ने 'विज्ञान के बढ़ते चरण' विषय पर व्याख्यान देते हुए मानव द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों तथा शोधों की चर्चा की।

आनुवांशिकी, जैव प्रौद्योगिकी, नैनोटेक्नोलॉजी, कम्प्यूटर विज्ञान, सूचना प्रौद्यागिकी, भौतिकी, रसायन विज्ञान आदि की अनेक नई खोजों तथा उनके प्रभावों एवं सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता एवं उपयोगिता पर चर्चा करते हुए डॉ0 निगम ने अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए और उपस्थित श्रोता समुदाय को चिंतन करने के नए बिंदु दिए।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष प्रो0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय ने डॉ0 निगम से अपने गुरु–शिष्य संबंधों की चर्चा की तथा उनकी विशिष्ट उपलब्धियों के बारे में बताया।

कार्यक्रम का आरंभ डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल' द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रभाषा वन्दना से हुआ। स्वामी सत्यप्रकाश जी के चित्र पर अतिथियों द्वारा माल्यार्पण के पश्चात् देवव्रत द्विवेदी ने स्वामी जी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने आगंतुक अतिथियों का स्वागत किया तथा डॉ0 हीरा लाल निगम के विज्ञान परिषद् से लम्बे संबंधों की याद करते हुए 'विज्ञान' के संपादक तथा विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री के रूप में उनके योगदानों का स्मरण किया। डॉ0 अशोक कुमार गुप्ता तथा श्री उमेश कुमार शुक्ल ने अतिथियों को माल्यार्पण किया।

इसी अवसर पर विज्ञान परिषद् द्वारा प्रसिद्ध विज्ञान लेखक डॉ0 विष्णु दत्त शर्मा जी के सौजन्य से प्रदान किया जाने वाला श्री प्रवीण कुमार शर्मा स्मृति सूचना प्रौद्योगिकी पुरस्कार भोपाल की श्रीमती शशि शुक्ला को मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी से प्रकाशित उनकी पुस्तक 'इंटरनेट' के लिए प्रदान किया गया। पुरस्कार राशि 5000 रुपये तथा प्रमाण पत्र डॉ0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय ने श्रीमती शुक्ला को

डॉ0 मुरली मनोहर जोशी को विज्ञान परिषद् की मानद फेलोशिप प्रदान करते परिषद् के उपसभापति, प्रधानमंत्री एवं अन्य

प्रदान किए। इस अवसर पर डॉ0 विष्णु दत्त शर्मा ने पुरस्कार की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए श्री प्रवीण कुमार शर्मा का संक्षिप्त जीवन परिचय प्रस्तुत किया।

इसी क्रम में डॉ0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय द्वारा डॉ0 पृथ्वी नाथ पाण्डेय की नई पुस्तक 'रामेश्वरम से राजपथ तक— डॉ0 अब्दुल कलाम' का लोकार्पण भी किया गया।

कार्यक्रम के अन्त में विज्ञान परिषद् प्रयाग के उपसभापति डॉ0 हनुमान प्रसाद तिवारी ने सभी के प्रति आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का संचालन देवव्रत द्विवेदी ने किया। (चित्र पिछले आवरण पृष्ठ पर)

डॉ० मुरली मनोहर जोशी को विज्ञान परिषद् की मानद फेलोशिप समर्पित

28 अगस्त 2002 को केन्द्रीय मानव संसाधन विकास, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा महासागर विकास मंत्री डॉ0 मुरली मनोहर जोशी के इलाहाबाद स्थित निवास पर आयोजित एक संक्षिप्त कार्यक्रम में डॉ0 जोशी को विज्ञान परिषद् प्रयाग की मानद फेलोशिप प्रदान की गई। इस अवसर पर परिषद् के उपसभापति डॉ0 हनुमान प्रसाद तिवारी ने डॉ0 जोशी को तिलक लगाकर माल्यार्पण किया तथा अंगवस्त्रम्, स्मृति चिन्ह तथा नारियल भेंट किया। परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने फेलोशिप के सम्मान पत्र का वाचन कर उसे डॉ0 जोशी को समर्पित किया।

इस अवसर पर अपने उद्बोधन में डॉ0 जोशी ने विज्ञान परिषद् प्रयाग से अपने दीर्घकालीन संबंधों को स्मरण करते हुए 1958 में विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका में प्रकाशित अपने प्रथम शोधपत्र का उल्लेख किया। डॉ0 जोशी ने कहा कि परिषद् ने अपने सीमित संसाधनों के होते हुए भी पिछले नौ दशकों में हिन्दी और विज्ञान के कल्याण के लिए जो कार्य किया है वह अनुकरणीय है। उन्होंने परिषद् को और अधिक संसाधन उपलब्ध किए जाने की माँग पर अपनी सहमति व्यक्त की तथा अपनी ओर से इस दिशा में यथासंभव योगदान करने का आश्वासन दिया। इस अवसर पर डॉ0 पूर्णचन्द्र गुप्त, डॉ0 अशोक कुमार गुप्त, डॉ0 ईश्वर चन्द्र शुक्ल, डॉ0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय, डॉ0 एम.डी. तिवारी, डॉ0 एच.सी. खरे, देवव्रत द्विवेदी, उमेश कुमार शुक्ल, डॉ0 के. एन. उत्तम तथा नगर के विद्वज्जन एवं आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा मीडिया के प्रतिनिधि उपस्थित थे।

देवव्रत द्विवेदी

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1. रचनायें टंकित रूप में सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न–स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।
समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं :–
भीतरी पृष्ठ पूरा 1000 रु0, आधा पृष्ठ 500 रु0, चौथाई पृष्ठ 250 रु0
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु0, आवरण चतुर्थ 4000 रु0

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं0 : (0532) 460001
ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा–विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती स्मृति व्याख्यान के अवसर पर (बायें से) डॉ. शिवगोपाल मिश्र, डॉ. के.बी. पाण्डेय, डॉ. हीरालाल निगम और डॉ. हनुमान प्रसाद तिवारी

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती स्मृति व्याख्यान देते हुए डॉ. हीरालाल निगम

श्रीमती शशि शुक्ला को प्रथम प्रवीण कुमार शर्मा स्मृति सूचना प्रौद्योगिकी पुरस्कार प्रदान करते हुए उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष डॉ. के.बी. पाण्डेय